chapter 2

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University, BARODA

द्वितीय अध्याय

दलित साहित्य का उद्‌भव और विकास

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

(क) **दलित साहित्य**

दलित साहित्य की परिभाषा

दलित साहित्य की आवश्यकता

दलित साहित्यकार

(ख) **वैश्विक धरातल पर दलित साहित्य**

अमरीका का ब्लेक लिटरेचर

अफ्रीकी साहित्य में रंगभेद और दलित चेतना

(ग) **भारत में दलित साहित्य यात्रा**

भारत (भारतीय साहित्य) में दलित साहित्य

कवि हीरा डोम या अछूतानंद

हिन्दी में दलित साहित्य

उत्तर भारत में दलित साहित्य

मध्यभारत में दलित साहित्य

पश्चिम भारत में दलित साहित्य

गुजराती में दलित साहित्य

दक्षिण भारत में दलित साहित्य

उड़िया में दलित साहित्य

तेलुगु में दलित साहित्य

मलयालम में दलित साहित्य

हम परिवर्तनवादी है - परिवर्तन ही हमारा धर्म है, युग-धर्म है । जब से मनुष्य ने सभ्यता की दहलीज़ पर कदम रखा है, वह निरंतर आगे ही बढ़ना गया है और अपने अनुभवों, अनुभूतियों, संवेदनाओं और विचारों को आवाज़ देता रहा है, और जब से रहित से सहित का भाव आया साहित्य ने जन्म लिया । साहित्य संस्कृति का संवाहक होकर युगीन समय एवं परिवेश के साथ छाया की तरह चलता रहा है । जैसा युग वैसा साहित्य । दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं, दोनों का संबंध चोली-दामन का हैं, दोनों ही अभिन्न हैं । इसलिए युग मानस में उठनेवालें विचार साहित्य कोश में पाए जाते है और उसीसे युग-विशेष का परिचय मिलता है । अपने समय के विचारों का वाहक साहित्य होता है । युगों से साहित्य की परिभाषाएँ होती आ रही है परंतु इतना तो निर्विवाद है कि साहित्य से मनुष्य की चितवृतियाँ परिष्कृत होती है और लोक-जीवन का सच्चा मर्मान्तक चित्र उपस्थित करना उसका धर्म होता है । परिवर्तन की लीक जितनी तेज़ी से साहित्य ग्रहण करता है, उतना और कोई नहीं, क्योंकि साहित्य का संबंध मनीषा से होता है जो परिवर्तन की पहली आहट सुनती है । साहित्य वही है, जिसमें लोकहित की भावना हो, मानवता का कल्याण हो जो समन्वय की भावना उत्पन्न करें ।

समय के प्रवाह के साथ हम आप सभी बदलते है और अनिवार्यत: विचार भी बदलते है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य प्राचीनता को प्रणाम कर नवीनता को सदा से वरण करता आया है । इसलिए साहित्य का सैद्धांतिक आधार भी बदलता रहा है । यद्यपि साहित्य युग का प्रतिनिधित्व करता है, तथापि भविष्य के बिम्बों का अंकन भी साहित्य का प्रधान धर्म है । नवयुग की चेतना का आभास साहित्यकार को होता है, भविष्य के पदचाप की आहट के प्रति वही जागरुक होता है । साहित्यकार अतीत का गायक ही नहीं, भविष्य का दृष्टा भी होता है - साथ ही साथ कल्पक और स्वप्न दृष्टा भी होता है । किंतु साहित्यकार कोई आसमानी जीव नहीं होता, वह भी तो इस धरती का ही प्राणी है और हमारे आसपास के वातावरण के अभावों से किसी भी मायने में वंचित नहीं होता । यह बात अलग है कि वह अपनी जातीय अस्मिता एवं वर्ण की अभिजात्य प्रवृति के कारण जातिवाद, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र की संस्कार जनित धारणा के कारण सामाजिक विषमता को गौण मानकर केवल आर्थिक विषमता एवं विद्रुपताओं का ही चित्रण अपने साहित्य में करता

है और सोहार्द, सौमनस्य और शोभन को ही प्रमुख स्थान देता है । यद्यपि आर्थिक विषमता भी स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता के समाज की निर्मिति में एक बहुत बड़ी बाधा है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । सामाजिक समता एवं आर्थिक समता के बिना राजनीतिक सत्ता और स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता पर आधारित सामाजिक संरचना के विचार बेकार सिद्ध होते हैं । इसलिए आर्थिक समता एवं सामाजिक समता की प्रेरणा संसार की साधारण जनता को जागृत तथा संगठित कर सनातनी मनुवादी सामाजिक व्यवस्था तथा शोषक वर्ग के खिलाफ संग्राम के लिए तैयार करने में प्रभावात्मक साबित होती है । दलित साहित्य के इस युगीन सत्य का वर्तमान समाज एवं साहित्य ने साक्षात्कार नहीं किया, वर्तमान की असंगतियों तथा जटिलताओं से मुँह मोड़कर अतीत में ही मनुवादी संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में अपनी कल्पनाओं का साम्राज्य सजाता रहा तो निस्संदेह वह हमारे जीवन के संघर्षो, घात-प्रतिघात तथा आकांक्षाओं का चित्र नहीं हो सकता । यह सर्वविदित है कि साहित्य में प्राचीन काल से आज तक दलितों की अस्मिता एवं स्वाभिमान को कोई महत्व नहीं दिया गया । संस्कृत साहित्य में दलित पात्रों की भाषा भी संस्कृत नहीं रही है यानी साहित्य और भाषा दोनों में दलितों का शोषण होता रहा है ।

साहित्य मात्र ही दलित होता है क्योंकि साहित्य संवेदना में होता है और संवेदना विपन्न के पक्ष में जाती है । आज अलग दलित साहित्य की बात जिस मानसिकता से उठी है, उसे समझने की कोशिश करनी चाहिए । ये वस्तुतः अलग साहित्य की माँग नहीं है, सामाजिक प्रतिष्ठा की माँग है । जिसका साहित्य से अप्रत्यक्ष संबंध है, प्रत्यक्ष नहीं पर यदि माँग उठती है तो साहित्य की प्रकृति यह हैं कि वह प्रतिष्ठा से अधिक प्यार की माँग करें ।

वैदिक काल से आज तक के विचारक, सभी साहित्य की शक्ति से सहमत हैं । क्योंकि साहित्य देश में वैचारिक क्रांति कर सकता है । समाज की अवस्था में उलट-फेर कर सकता है और शीतल सुधा के समान रसवान कराकर विदग्ध हृदय को शांति प्रदान करा सकता है याने भयानक वर्ग-वर्ण संघर्ष की अग्नि को प्रज्वलित करने की साहित्य में चिनगारी है, आग है तो शांति की शीतल छाया के अक्षय वट की क्षमता भी साहित्य में है ।

साहित्य में दलित रचनाकारों का पहला बड़ा और कारगर हस्तक्षेप मराठी भाषा में हुआ । अम्बेड़कर प्रेरित दलित पेन्थर आंदोलन ने मराठी

कविता और कथा साहित्य में सहसा एक चकाचौंध पैदा कर दी थी जिसकी अनुगूँज साठ और सत्तर के दशक में हिन्दी में सुनाई दी । यह भी सच है कि जब पहली बार कमलेश्वर ने दलित लेखन का हिन्दी में बड़े पैमाने पर प्रस्तुतीकरण किया तब हिन्दी क्षेत्र में वह कुतुहल का विषय ही ज्यादा बना । हिन्दी क्षेत्र में दलित लेखन शुरु तो बहुत पहले हो गया था पर उसकी पहचान बननें में देर लगी । पहले हिन्दी में दलित लेखकों और चिंतकों द्वारा दलित चेतना और संघर्ष को लेकर वैचारिक, ऐतिहासिक और सामाजिक लेखन हुआ । हिन्दी में दलित लेखन का यह एक महत्वपूर्ण दौर माना जायेगा । इसके बाद रचनात्मक लेखन का इतिहास ज्यादा लंबा नहीं है । बींसवीं सदी के उत्तरार्ध में दलित लेखक हिन्दी में सामने आए पर उनकी उपस्थिति न कविता में दर्ज हुई न कथा रचना में पर इसी बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में दलित प्रश्न एक केन्द्रिय मुद्दे के रूप में सामने आया ।

हिन्दी रचना जगत में दलित लेखकों की सक्रियता तीन क्षेत्रों में सामने आई । उन्होंने बड़े पैमाने पर रचनात्मक साहित्य लिखा । दलित लेखकों की कविताएँ और कथाकृतियाँ प्रकाशित हुई । उन्होंने आत्मकथाएँ लिखी जिनमें उन जीवन स्थितियों की भयावह तस्वीरें थी जो उन्होंने खुद वर्ण व्यवस्था के चलते झेली थी । इसके साथ ही दलित लेखकों ने बड़े पैमाने पर सामाजिक सांस्कृतिक परिदृश्य में जाति व्यवस्था के अभिशाप के विरुद्ध वैचारिक लेखन किया ।

यहाँ पिछले कुछ बरसों में सभी सवर्ण लेखकों ने दो बड़े सवाल उठाए । पहला सवाल दलित साहित्य के सौंदर्य और रचना कौशल को लेकर उठाया गया । कहा यह गया कि दलित रचनाकार शिल्प और रचना सौंदर्य की दृष्टि से सफल नहीं है । ठीक यही सवाल बीसवीं सदी के पूर्वाध में अमेरीका में अश्वेत रचनाकारों की कृतियों को लेकर उठाए गए थे और एडिसन गायलर (जू.) जैसे अश्वेत विचारकों ने "दि ब्लैक ईस्थेटिक्स" जैसी किताबें लिखी थी हिन्दी में थी मोहनदास नैमिषराय और ओम प्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखकों ने दलित साहित्य के स्वायत सौंदर्यशास्त्र पर विचारात्मक लेखन किया । दलित लेखक का जोर सौंदर्यबोध पर नहीं जातीय समाजशास्त्र पर रहा है और यही समाजशास्त्रीय विवेक उसके लेखन की पहचान रहा है । दलित रचनाकार का आदर्श कबीर रहे है जो सामाजिक व्यवस्था ही नहीं रचना के ढाँचे को भी तोड़ते है ।

एक दूसरा बड़ा सवाल आज के हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी बहस बनी है । दलित लेखक की यह मान्यता है कि स्वयं दलित ही दलित जीवन पर लिख सकता है । हिन्दी के अधिकांश लेखकों ने इस बात का गहरा प्रतिवाद किया कि दलित ही दलित लेखन कर सकता है यह तर्क दलित सिद्धांतकारों ने पूरी तरह खारिज किया । उनका कहना था कि जिस समाज की दुर्दशा का जिम्मेदार ही सवर्ण और उसका धर्मतंत्र है वह उसकी तकलीफ के बारे में क्या जानता है ? वह क्यों दलित पर लिखें ? साठ के दशक में अश्वेत साहित्य को लेकर श्वेत साहित्यकारों ने भी ऐसा ही सवाल उठाया था पर जल्दी ही वहाँ यह मान लिया गया कि अश्वेत रचनाकार ही अश्वेत साहित्य के प्रतिनिधि है । हिन्दी में अभी यह खींचतान जारी है । अक्सर तर्क यह दिया जाता रहा है कि लेखक स्वानुभूति और सहानुभूति के आधार पर लिखता है । लेकिन सामाजिक न्याय की शर्त न स्वानुभूति से पूरी होती है न ही सहानुभूति से । सहानुभूति अक्सर सामंती उदारता का ही एक रूप होती है और सामंती उदारता यथास्थिति में किसी बुनियादी परिवर्तन का प्रयत्न नहीं करती । स्वानुभूति एक धोखा भी हो सकता है । किसी भी स्वानुभूति यह भी तो हो सकती है और होती रही है कि उत्पीड़न के साथ जो हो रहा है वह सही हो रहा है जिन्होंने शूद्रों के विरुद्ध अमानवीय नियम बनाए वे स्वानुभूति पर ही निर्भर कर रहे थे । यह उनका विश्वास था कि उन्हें अनुभव से मालूम है कि दलित दुर्दशा का पात्र है ।

(क) दलित साहित्य :

प्रस्तावना :

शोषण चाहे मानसिक हो या सामाजिक, आर्थिक हो या धार्मिक उसके विरुद्ध विद्रोह होगा ही । उसमें समय कितना भी लग सकता है । जैसे भारत में शताब्दियाँ बीत गयी, धर्म के नाम पर एक वर्ग को सामाजिक मानसिक और आर्थिक शोषण सहते हुए । लेकिन जैसे ही उस वर्ग में जरा सी चेतना आयी, उसके विद्रोह का विस्फोट हुआ । उसका ही परिणाम है - दलित साहित्य । हिन्दी में इस चेतना का पहला विस्फोट मध्यकाल के संत साहित्य में हुआ । जब शताब्दियों से चली आयी धार्मिक गैर बराबरी की व्यवस्था को पहली बार निर्गुणी संतों ने सामाजिक धरातल पर चुनौती दी थी कि भगवान किसी मंदिर में कैंद पत्थर की मूर्ति नहीं है और वह किसी जाति

विशेष की बपौती भी नहीं है । वैसे तो सभी निर्गुणी संत इस व्यवस्था का विरोध कर रहे थे लेकिन जिस जाति ने विषमता के विष का सर्वाधिक पान किया, उसी जाति के संत रैदास ने इस व्यवस्था के मूल को समझकर उस पर चोट की और वह मूल था - वर्ण व्यवस्था । रैदास इस व्यवस्था पर सबसे पहले टिप्पणी करते है -

"ब्राह्मण - ऊँचे कुल के कारण, ब्राह्मण कोय न होय ।
जोऊ जानहि ब्रह्म आत्मा, रैदास कही ब्राह्मण सोय ।।
क्षत्रिय - दीन दुःखी के हेत, जउ वारे अपने प्राण ।
रैदास उह नर सूर को, साँचा छत्री जान ।।
वैश्य - सांची हाटी बैठि करि, सौदा साँचा देई ।
तकड़ी तौले साँच की, रैदास बैस है सोई ।।
शूद्र - रैदास जऊ अति अपवित, सोई सूदर जान ।
जऊ कुकरमी असुध जन, तिन्ह हीन सूदर मान ।।"[1]

इस पूरे विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रैदास समाज के विभाजन का आधार व्यक्ति के कर्म को मानते है जन्म को नहीं । जबकि हिन्दू धर्म में इस जन्म के आधार पर इसलिए माना गया है, ताकि व्यक्ति को जन्म से ही श्रेष्ठ या निकृष्ट मान लिया जाए । आगे चलकर रैदास इससे विद्रोह की स्पष्ट घोषणा कर देते है -

रैदास जन्म के कारणै, होत न कोई नीच ।
नर को नीच करि डारि हैं, औढे करम की कीच ।।[2]

हिन्दू धर्म में व्याप्त छूआछूत के विरोध की जिस परंपरा का प्रारंभ निर्गुण संतों ने किया । उसका अनुसरण बाद के सुधारवादी धर्म प्रचारक और राजनीतिज्ञ भी करते रहें । इनमें स्वामी दयानंद, आचार्य विनोबा भावे तथा महात्मा गांधी के नाम महत्वपूर्ण है । स्वामी दयानंद खंडन-मंडन की प्रक्रिया अपनाते हुए सबके लिए आर्य समाज में प्रवेश खोल देते है । जनेऊ धारण करने की आज्ञा भी दे देते है, यज्ञ-हवन में भाग लेने पर भी आपत्ति समाप्त कर देते है । लेकिन इससे वर्ण और जाति के बंधन वहाँ तक ढीले पड़े ? क्या सभी आर्य समाजी वर्ण जाति भूलकर रोटी-बेटी का रिश्ता जोड़ने लगे ? ऐसा नहीं हुआ । विनोबा भावे और गांधी ने व्यवस्था मानते हुए उस पर अपना पूरा विश्वास भी व्यक्त किया । इसका कारण क्या है ? इसका स्पष्ट कारण है ये लोग अपने-अपने वर्ण के 'जन्मता श्रेष्ठता' के अधिकार को

छोड़ना नहीं चाहते थे । जिसके कारण भारत में सारी भौतिक उपलब्धियाँ प्राप्त होती है ? इस देश में छूआछूत कैसे समाप्त होगी ? इसलिए रैदास और अम्बेड़कर की अपनी एक अलग परंपरा है । जिसमें महात्मा फुले तो जुड़ते है - दयानंद, विनोबा भावे और गांधी नहीं । क्योंकि उन्होंने बीच-बीच में आकर इस आंदोलन को भटकाया ही है । जिसका लाभ ब्राह्मणवाद को जीवनदान के रूप में मिला है ।

आज हिन्दी के दलित साहित्यकार के सामने उसका लक्ष्य स्पष्ट है, उसे इसी प्रकार की समाज व्यवस्था से लड़ना है - साहित्य के हथियार से । अनुभव और विचार की एक व्यापक पृष्ठभूमि उसके पास है । इसमें डॉ. अम्बेड़कर की विचारधारा से अनुप्राणित मराठी का सर्वमान्य दलित साहित्य और हिन्दी में गैर-दलित लेखकों द्वारा दलित चेतना का साहित्य है । सर्वप्रथम हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का नाम लिया जा सकता है । जिन्होंने 'बिल्लेश बकरियाँ' तथा 'चतुरी चमार' जैसे लघु उपन्यास लिखें । जिसमें समाज के तथाकथित निम्नवर्गीय लोगों के साथ खान-पान का संबंध रखने पर किसी उच्च्य वर्ग के व्यक्ति को किस प्रकार का विरोध सहना पड़ता है । यहाँ तक कि उसका समाज से बहिष्कार कर दिया जाता है । उसके बाद आते है - प्रेमचंद जो मूलतः ग्रामीण विसंगतियों के लेखक है । उन्होंने गाँव से बाहर रहते हुए दलितों को जीवन का नरक भोगते हुए देखा और उनकी पीड़ा को अपनी कुछ कहानियों का उपजीव्य बनाया । उनकी कहानियों में - ठाकुर का कुँआ, धासवली, दूध का दाम, सद्गति, मंत्र तथा बाबा का भोज आदि के नाम लिए जा सकते है । इसके बाद प्रेमचंद के कुछ समकालीन साहित्यकारों ने भी अपनी कुछ रचनाओं में दलित जीवन की विसंगतियों को उठाया है । इनमें यशपाल, फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, डॉ. शिवप्रसाद सिंह, गिरिराज किशोर, अमृतलाल नागर और हरिसुमन विष्ट आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

दलित साहित्य कोई मर्सिया नहीं है, जो दलितों की दीनता और दुर्दशा पर लिखा-पढ़ा जाए । दलित साहित्य को दलितों की दुर्दशा का शोक साहित्य नहीं बनने देना है । दलित साहित्य को शक्ति और प्रेरणा का साहित्य बनाना है । दलित साहित्य शक्ति का स्रोत संदेशों की सरिता बने, ऐसा प्रयास दलित साहित्यकारों को करना है ।

समाज को मानसिक रूप से बदलने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें गुमराह करनेवाले साहित्य से मुक्ति दिलाकर असली साहित्य

(दलित साहित्य) उपलब्ध कराया जाए । जिससे वह मानसिक रूप से उन कुरीतियों से छुटकारा पा सके जो न तो मानव हित में है न देश हित में ।

दलित साहित्य की परिभाषा :

दलित साहित्य की परिभाषा में दलित के स्वरूप, दलित की व्याख्या, कल्पना और ख्याल को छोड़ा नहीं जा सकता । जरूरत पड़े तो खुद इस 'दलित' शब्द को छोड़ा जा सकता है । दलित जीवन में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना की सारी खूबियाँ और शक्तियाँ है । किसी की क्या मजाल है कि दलित की मुस्कान पर रोक लगा दे ? दलित का बच्चा वैसे ही मुस्कुराता है जैसे प्रकृति उसे चाहती है । दलित साहित्यकार ने सबसे पहले अपने मनुष्य की खोज़ की है और हिन्दूओं की समाजव्यवस्था में खुद के लिए चौथे वर्ण की स्थिति उसने कभी कबूल नहीं की । ब्राह्मण उसे शूद्र और अछूत कहता है, कहता रहें, लेकिन दलित ने इस समाज-व्यवस्था पर सदा अपनी विमत टिप्पणी दर्ज की है । दलित की इस विमत टिप्पणी को शम्बूक, एकलव्य, कबीर और अम्बेडकर के रूप में ध्यानपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए । यदि उसे ठीक से नहीं पढ़ा गया तो दलित और गैर-दलित दोनों तरफ के समाज-दार्शनिकों द्वारा 'दलित' और 'दलित साहित्य' की गलत परिभाषाएँ की जा सकती है ।

राजेन्द्र यादव :

अब समय दलित साहित्य का है । कितने दिनों तक ललित साहित्य को ओढ़ते-बिछाते रहोगें ।[3]

जयप्रकाश कदर्म :

दलित साहित्यकारों की रचनाओं का मूल मंतव्य दलित साहित्य को खारिज करना है । इसलिए वे परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के आधार पर दलित साहित्य की रचनाओं को कमज़ोर बनाकर उनको हाशिये पर फेंकने की कोशिश कर रहे है । आज यह कार्य एक सुनियोजित षडयंत्र के तहत किया जा रहा है । हिन्दी साहित्य के ऐसे बहुत से आलोचक, साहित्यकार और संपादक है जो एक तरफ दलित साहित्य के हिमायती या झण्डा-बरदार बनते है ओर दूसरी और कला सौंदर्य की बात उठाकर उसको खारिज करने की कोशिश करते हैं । दलित साहित्य को सबसे बड़ा खतरा इन छद्मवेशियों से ही है । दलित साहित्य सदियों से पद-दलित लोगों की अभिव्यक्ति का

साहित्य है । इसका यह मतलब कतई नहीं की दलित साहित्य में कोई कला या सौंदर्य नहीं है । उसका अपना सौंदर्य है, कमी उस सौंदर्य को देखनेवाली आँखों की है ।[4]

डॉ. धर्मवीर (भारती) :

जहाँ तक दलित साहित्य में सौंदर्यशास्त्र का सवाल है मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह एक समय विशेष की बात है दलित मनुष्य भी एक पूरे मनुष्य रूप में ही जन्म लेता है और जो जन्म लेता है वह दलित और द्विज के द्वन्द्व से उपर होता है मनुष्य के रूप में दलित का अपनी सृष्टि से सीधा संबंध है । वह ब्रह्मांड में चाँद और सितारें, आकाश और पाताल, सूर्योदय और सूर्यास्त, फूल और पत्तियाँ, धूप और छाँव सभी कुछ देखता है । वह अपने ईश्वर या अनीश्वर को द्विज दर्शन को बीच से हटकर देखना चाहता है । वह फूल को सुंदर कहना चाहता है लेकिन उसके हाथ में काँटा चुभ गया है । वह अपनी प्रियतमा का मुख चुमना चाहता है, लेकिन उसी समय द्विज शिकारी ने उसकी छाती में तीर मार दिया है । यही कारण है कि अभी हम दलित मनुष्य का दहन और आक्रोश ही देख पा रहे है । मुझे याद आ रहा है कि ऐसी स्थिति में द्विजों ने क्या कहा है - "भूखे भजन न होई गोपाला यह ले अपनी कंठी माला" पेट भरा होने पर ईश्वर की आराधना में द्विजों ने नवधा भक्ति की खोज की है, यही दलितों की भूख शांत हो तो वे अठारह प्रकार की भक्ति की खोज कर सकते हैं ।[5]

कमलेश्वर :

कलावादी लोग कविता द्वारा साहित्य को सुंदर बनाने की बात करते है तो हम मानवतावादी साहित्य द्वारा मानव को सुंदर बनाना चाहते है ।[6]

डॉ. तुलसीराम :

न सिर्फ भारत बल्कि पूरे विश्व में साहित्य पर नज़र डाली जाय तो पता चलता है कि जहाँ जैसी राजनीतिक परिस्थितियाँ होती है, वहाँ वैसा ही साहित्य लेखन होता है । साहित्य में राजनीतिक परिस्थितियाँ के समर्थन और विरोध दोनों का स्वर मौजूद होता है । राजनीतिक संबंध हर साहित्य से है न कि सिर्फ दलित साहित्य से । वैदिक काल में जो साहित्य रचा गया, उसे प्राय: धार्मिक साहित्य कहा जाता है, किंतु वास्तव में यह धार्मिक साहित्य वैदिक युगीन समाज की राजनीतिक प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता था । इस

विशिष्टता के कारण वैदिक युग का भारत दुनिया का पहला थियोक्रेटिक स्टेट-धर्म शासित राज्य था । इसीलिए भारत का संपूर्ण वैदिक ब्राह्मणवादी साहित्य राजनीतिक साहित्य है । लिहाजा दलित साहित्य पर यह आरोप बिलकुल असंगत है कि वह राजनीति से प्रेरित है । जिस देश में वर्ण-व्यवस्था पर आधारित धार्मिक साहित्य लिखा गया उसे लागू करने के लिए राजनीतिक व्यवस्था कायम की गयी, उसे मनवाने के लिए दंड-विधान बनाए गए, जिनका आधार भी जाति प्रणाली ही थी । यहाँ तक कि कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' कहता है कि - यदि शूद्र किसी वस्तु को चुराता है तो उसका हाथ काट दिया जाय, उसी वस्तु को वैश्य चुराये तो कुछ पण (मुद्रा) दणु स्वरूप वसूल किए जाए, यदि क्षत्रिय चुराये तो उसे फटकारा जाए, किंतु उसे ब्राह्मण चुराये तो उससे प्रार्थना की जाय कि वह दोबारा चोरी न करें । 'मनुस्मृति' में तो यहाँ तक कहाँ गया कि 'मोण्डन्यमेय विप्राय मृत्युदण्डः' अर्थात् ब्राह्मण को मृत्यु दण्ड देता है तो मात्र उसका मुण्डन करा दिया जाय । इस तरह का विधान शूद्रों के खिलाफ बताया गया था, जिसका उपयोग बौध्द दर्शन के विरूध्द भी किया गया ।[7]

डॉ. सौहनपाल सुमनाक्षर :

एक बात का स्पष्ट उल्लेख जरूरी है कि 'दलित साहित्य' हिन्दी साहित्य के विकास की एक धारा नहीं है । जो ऐसा मानते है वे गलत है । दलित साहित्य की अपनी एक अलग सोच है तथा वह दलितों के जीवन की सच्चाई को बिना किसी पूर्वाग्रह की भावना से व्यक्त करना चाहती है । दलित साहित्यकार किसी के सुने-सुनाए पर विश्वास नहीं करते है । वे साहित्य में परिवर्तन चाहते है । इसमें समाज भी बदलेगा तथा उसे एक नयी दिशा मिलेगी । अगर हिन्दी साहित्य ने इससे कुछ लेने की प्रेरणा ली तो शायद उसमें जो ठहराव आ गया है, वह खत्म हो जाएगा तथा उसे भी एक नयी उर्जा मिलेगी ।[8]

श्री मोहनदास नैमिशराय :

सवर्णो के पास तो कोरी कल्पनाएँ है जबकि दलितों के पास समूचा इतिहास है । भोगे हुए अनुभव पीड़ा से उपजे आक्रोश की विरासत है । जब वह विरासत आगे बढ़ेगी तब दलित साहित्य का सूरज उतना तो साहित्य के आकाश पर अपनी किरणों के साथ फैल ही जाएगा । फिर इन्हीं परंपरावादी

लेखकों की आँखे चुंधियाँ जाएँगी, उस समय इनके सामने दलित साहित्य को स्वीकारने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचेगा । निश्चित ही ऐसी स्थिति में आदमी-आदमी के बीच सही तौर पर संवाद होगा ।[9]

श्री माताप्रसाद :

दलित साहित्य केवल दलितों का लेखन नहीं है, बल्कि जिन्होंने भी उसकी पीड़ा का अनुभव करके उन पर साहित्य सृजन किया है वह सृजन दलित साहित्य की श्रेणी में आता है । पहले अवश्य कुछ लोगों ने सोचा था कि दलितों का अपमान पीड़ा-व्यथा को जिसने अनुभव नहीं किया है वह दलित साहित्यकार नहीं हो सकता । भुक्तभोगी ही ऐसा साहित्य लिख सकता है । किंतु अब यह माना जाने लगा है कि जो भी गैर-दलित, दलितों की स्थिति का वास्तविक चित्रण करता है वह भी दलित साहित्यकार है । इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद को इस श्रेणी में प्रथम स्थान पर रखा जा सकता है । दूसरे भी कई गैर-दलित साहित्यकार हैं, जिन्होंने उच्चकोटि का दलित साहित्य लिखा है ।[10]

श्री प्रेमकुमार मणि :

दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है । यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है । सम्पूर्ण विज्ञान इसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता इसका इष्ट है ।[11]

श्री बाबूराव बागुल :

दलित साहित्य वह विचार है जो मनुष्य को शिक्षित करता है, जो मनुष्य को देव, धर्म, देश से भी उच्च स्तर पर रखता है । यह वह विचार है जो आज के युग में मेल खाता है । दलित साहित्य का केन्द्र बिंदु मानव है और वह मानव के इर्द-गिर्द ही घूमता है ।[12]

श्री एस.एल. विरदी :

दलित साहित्य कला के लिए कला के विरुद्ध सनातन रूढियों के विरुद्ध तथा परंपरा व जातिवाद के विरुद्ध है ।[13]

श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि :

दलित साहित्य समाज में फैले आर्थिक शोषण के विरूद्ध एक सशक्त क्रांति है । दलित साहित्य में अनुभवों से उत्पन्न आशय निष्ठा ही अधिक है

पारंपारिक साहित्य ने जिसे त्याज्य और निषिद्ध माना है, दलित साहित्य ने उसे अपने अनुभवों के आधार पर प्रमुखता दी है । उन अनुभवों की अभिव्यक्ति के मूल्यांकन के लिए पारंपारिक समीक्षा के मानदण्ड निष्कर्ष देंगे ।[14]

डॉ. शिवकुमार मिश्र :

हिन्दी या अन्यान्य भाषाओं में दलितों के बारे में जो भी लिखा गया है, नामी गिरामी रचनाकारों द्वारा भी उसकी अपनी सीमाएँ है । वह अधिकांशता उदार मानसिकता और मानवतावादी चेतना के सवर्ण रचनाकारों द्वारा ही लिखा गया है । इस लेखन में दलित जीवन की सच्चाईयाँ और उसका यथार्थ जरूर सामने आया है पर कुछ अपवादों को छोड़कर इनमें दलितों की नारकीय जीवन स्थितियों पर या तो आसूं बहाए गए है, उन पर दया या सहानुभूति प्रकट की गई है ।

दीपक महेता :

दलित साहित्य कोई एक वर्ग के वर्ण का साहित्य नहीं है । दुनिया में ज्यां क्यांय दलित शोषित क्षुधार्त होय तेनी साथे चैतातिक अने भावात्मक एकम निपजावी सके ते दलित साहित्य । दलित साहित्यना केन्द्र उपर (बिंदु) माणस उभो छे । देव धर्म के देश करतां पण माणस वेडरो छे ।[15]

हरीश मंगलम् :

शैलीगत विशेषता प्रकट करते है । दलित साहित्य दलित समाज साथे अविनाभावी संबंध थी जोड़ायेलों छे । ये घटना विधान तो साहित्य छे । एमा सररियालिज़म फ्युविस्म ना आटापाटा नहीं बल्कि दलिताइझम अने एमा व्यक्त थती Acute race Consciousness & Fallen Caste नी संवेदना अनुभवाती जोवा मळे छे ।[16]

रघुवीर चौधरी :

श्रमजीवी का लड़का साहित्यकार बन सके यहीं आवकार्य घटना है । श्री रघुवीर चौधरी रंगद्वार प्रकाशन के उपक्रम में गुजराती साहित्य परिषद में दिनांक 13-4-1988 को 'कहानी शिबिर' का गठन किया था तभी अपने वक्तव्य में दलित साहित्य की परिभाषा दी थी - 'दलित साहित्य अर्थात् सच कहनेवाला साहित्य'[17]

ललिता कुलकर्णी :

दलित साहित्य को अद्विितीय घटना कहती है - Dalit literature is anique phemomenon a happing worth noting unheart for before in the history of INDIAN literature.

दलित साहित्य की आवश्यकता :

कहा जाता है "किसी समाज को समूल नष्ट करना हो तो सर्वप्रथम उस समाज का साहित्य/इतिहास नष्ट किया जाना चाहिए ।" दलित समाज के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ है । आगे 'दलित समाज' के विषय में अगर कहे तो उसमें से उत्पन्न साहित्य जिसे हम कहते है कि 'साहित्य समाज का दर्पण है ।'[18] दर्पण का प्रयोग मानव समाज अपने को सजाने और संवारने के लिए करता है, अपनी गलतियों को भविष्य में न दोहराने के लिए करता है । इसी प्रकार से साहित्य सच्चे अर्थो में साहित्य तभी हो सकता है, जब उसमें सामाजिक विषमताओं को दूर करने, समाज में व्यापी गैर बराबरी के खिलाफ लड़ने, जातिप्रथा का उन्मूलन और समतामूलक समाज की स्थापना का संकल्प हो ।

दलित साहित्य, दलितों के गौरवपूर्ण इतिहास को बनाता है । राष्ट्रनिर्माण में दलितों के योगदान के बारे में सही जानकारी दलित साहित्य से ही मिलती है । दलित साहित्य राष्ट्रीय एकता को प्रदर्शित करता है । यह भ्रातृभाव का संदेश देता है । संत रविदास को ही ले जब वे कहते है -

"जाति-पांति पूछे नहीं कोई ।
हरि का भजै सो हरि का होई ।।"

वही तुलसीदास की ये पंक्ति -

"ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ।"

साहित्यकारों ने दलित साहित्य के बारे में जो कुछ लिखा है, उसमें दलितों के साथ सामाजिक भेदभाव बरता गया है । सदियों से दलितों को इतना उपेक्षित कर दिया गया है कि आज दलित साहित्य में आक्रोश, विक्षोभ, प्रतिहिंसा और सदियों से झेले गए संतोष की कसक होती है । आज आवश्यकता है कि दलित साहित्यकार, दलित साहित्य के माध्यम से आत्म संतुष्टि, आत्म-स्वाभिमान और आत्मविश्वास जगाने के लिए साहित्य की रचना करें ।

अपनी आवश्यकता की हर वस्तुओं के लिए दलित समाज दासों की तरह कब तक दूसरों पर आश्रित रहेगा । भारतीय सामाजिक जीवन की मुख्य धारा के अंदर हाशियें की जिंदगी व्यतीत कर रहे दलित समाज ने गुलामी की यातना को सहा था और जब भी मौका मिला, अपनी बातों तथा दु:ख तकलीफों को समाज के सामने रखा, किंतु समाज के तथाकथित कट्रपंथी हिन्दूओं ने सदैव ही दलितों की अभिव्यक्ति को महत्व नहीं दिया । किंतु अब काफी परिवर्तन आ चुका है, दलित साहित्य अपना स्थान निर्धारित करके ही रहेगा । संत कवि रविदास एक उच्चकोटि के समाज सुधारक थे । अंत: उन्हें भी इस सत्य को स्वीकारना पड़ा कि -

रैदास - "जन्म के कारण होत न कोई नीचा नर को ।
नीच करि डारि है, औछे करम का नीच ।।"

संत रविदास की यह आत्मा स्वीकृति इस बात का प्रमाण देती है कि दलित साहित्य ही सही अर्थो में दलित पीड़ा की अभिव्यक्ति कर सकता है । ज्योतिबा फूले का कथन है कि - "गुलामी की यातना को जो सहता है वही जानता है, और जो जानता है, वही पूरा कर सकता है ।" इस कथन से साफ हो जाता हैं कि दलित जीवन की वास्तविक पीड़ा को वही व्यक्त कर सकता है जो स्वयं दलित है । दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया है । यदि ऐसा न होता तो अनगिनत लोग दलित उत्थान और दलित उत्थान के साहित्य की बाते करनेवाले थे ।

डॉ. अम्बेडकर के जीवन और दर्शन ने दलित साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की तथा दलित साहित्यकारों को लड़ने की ताकात और जूझने का साहस प्रदान किया है । डॉ. अम्बेड़कर और ज्योतिबा फूले की जीवन दृष्टि दलित साहित्य की उर्जा है । भारतीय साहित्य वर्ण व्यवस्था पर आधारित है जबकि दलित साहित्य वर्ण व्यवस्था का घोर विरोधी है । दलित साहित्य इसलिए भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि देश की आबादी का चोथाई हिस्सा राष्ट्र निर्माण में पीढ़ियों दर पीढ़ियों खपा दी जाए और आज तक उनके पूर्वजों की उपेक्षा होती रही है । गुलाम को बार-बार इस बात का अहसास दिलाते रहा जाय कि तुमने इस देश को लूटा है । इस देश को बाँटने के लिए विदेशियों तक से हाथ मिलाया है । आज इस बात की लड़ाई है कि कौन स्वदेशी साहित्य है और कौन विदेशी साहित्य है । दलित साहित्य

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

देश की महेनतकश उपेक्षित जनता का साहित्य है, इसलिए इसकी जड़े दिन प्रतिदिन मज़बूत होती जाएगी ।

सन् साठ के दशक में एक युगान्तकारी परिवर्तन आया, जब वर्ण व्यवस्था तथा शोषण के विरूद्ध दलित साहित्यकारों ने पहली बार अपने नेतृत्व में साहित्य सृजन शुरु किया, उसके जनक बाबा साहेब अम्बेड़कर है । बुद्ध के बाद अम्बेड़कर पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को समूल उखाड़ फेंकने के लिए अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया था । आज की तारीख़ में डॉ. अम्बेड़कर की व्यापकता ही दलित साहित्य की मुख्य धारा है ।

दलित साहित्य अलग-अलग अर्थ प्रस्तुत करता है । उदा. के लिए शंकराचार्य जीवनभर गौतम बुद्ध की जड़ काटते रहे किंतु अपनी वंदना में उन्होंने एक श्लोक लिखा है - "जिसमें बुद्ध को महान योगी तथा कमलासन पर बैठे विष्णु का अवतार बताया गया है । किंतु दलित लेखक दया पवार उसी गौतम बुद्ध के विषय में लिखते है - बुद्ध अजंता तथा इलोरा में तराशी गई प्रतिमाओं में मैं तुम्हें नहीं देखता, मैं तो तुम्हें गरीबों, दु:ख के मारे लोगों से बाते करते, उनकी बस्तियों में घूमते हुए देखता हूँ । दलित साहित्य तब तक जरुरी है जब तक जाति व्यवस्था, छूआछूत, सामाजिक न्याय तथा असमानता कायम रहेगी । दलित अपनी अस्मिता और अपनी पहचान अपने साहित्य द्वारा ही स्थापित कर सकता है । दलितों को किसी का मोहताज़ बनकर नहीं रहना चाहिए । दलित साहित्य से ही देश का धर्मनिरपेक्ष चरित्र बचाया जा सकता है । दलित साहित्य से ही जातिविहिन समाज की संरचना संभव है ।"[19]

दलित साहित्यकार :

स्वतंत्र भारत में पचास वर्षो से अधिक की आज़ादी के पश्चात भी इस देश में दलित साहित्यकारों को अनेक समस्याओं से जूझना पड़ रहा है । जिन समस्याओं से दलित साहित्यकारों को जूझना पड़ रहा है, उन समस्याओं से अपने आपको उच्च वर्गीय कहनेवाले साहित्यकार मुक्त है । यदि संबंधित लोग चाहे तो दलित कवि, लेखक और साहित्यकारों की समस्या को सुलजाई जा सकती है ।[20]

दलित कवि, लेखक और साहित्यकारों की अनेकों समस्याएँ है । सबसे बड़ी समस्या है धन का अभाव और उनकी गरीबी । वे लोग लिखते है किंतु छपवा नहीं सकते, प्रकाशित नहीं करवा सकते । उनके पास अपना प्रेस,

बुकसेलर, प्रकाशक नहीं है । दलित लेखक और साहित्यकार का अपना कोई सशक्त मंच नहीं है । कुछ छोटे-मोटे मंच अवश्य है, किंतु वे पर्याप्त और सक्षम नहीं है, जिससे उनके विचार, उनकी रचनाएँ, पुस्तकें आदि का प्रचार-प्रसार आम जनता तक नहीं हो पाता ।[21]

आज दलित जातियों के अधिकांश लोग डॉ. अम्बेड़कर के द्वारा किये गये संघर्ष के परिणाम स्वरूप प्राप्त सुविधाओं के बल पर पढ़ लिख कर विद्वान बन चुके हैं । गुणवान बन चुके है, बुद्धिमान बन चुके है । उनमें अनेक कवि, लेखक और साहित्यकार जन्म ले चुके है, और अपनी लेखन कला के माध्यम से एक नये समाज का निर्माण करने में लगे हुए है । उन संघर्षशील दलित साहित्यकारों द्वारा इस दलितों का शक्तिशाली साहित्य लिखा जा रहा है । वह दलितों का साहित्य, जिसने वेदकाल से चली आ रही मान्यताओं, नियमों और विश्वासों को समूचा छिलकर रख दिया है । अब उसने हर पुरानपंथी बातों को नकार दिया है, और अपनी नीतियों, विश्वास आदि की स्थापना करना आरंभ कर दिया है । अब दलित समाज और दलित साहित्यकार जागृत हो चुका है । दलितों के मार्गदाता डॉ. अम्बेड़कर ने उन्हें जीना और अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखा दिया है । अब दलित समाज और दलित साहित्यकार सिर झुकाकर चुप नहीं बैठ सकता और किसी भी प्रकार का अत्याचार सहन नहीं कर सकता । अब वह अपने प्रति अथवा अपने समाज के प्रति पूरी तरह सचेत है । जागृत सदियों के सम्ताप की भट्टी ने उसे शोला बना दिया है, उसमें आग है, जलत है और प्रकाश भी है । आज के दलित साहित्यकार का और दलित समाज का यह सच्चा स्वरुप है । वह धीरे-धीरे अपना तेजपूर्ण स्वरूप ग्रहण करता जा रहा है ।

आज भी स्वतंत्र भारत में दलित समाज शोषित, पीड़ित है, उपेक्षित है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्याय, अत्याचार का शिकार है । क्या यह सच नहीं है कि आज भी स्वतंत्र भारत में कितने ही दलितों की हत्याएँ हो रही है । कितने ही निर्दोष स्त्री, पुरुष और बच्चों को गोलियों से भून दिया जाता है मार डाला जाता है, उजाड़ दिया जाता है । इसलिए कि वे उच्चवर्गीय लोगों की मुफ्त में गुलामी करते रहे । उनके आतंक से आतंकित होकर उनका हुक्म मानने के लिए सदैव तैयार रहें । कितने ही दलितों के घर जलाएँ जा रहे हैं, उनकी माँ, बहिनों और बहू-बेटियों के साथ बलात्कार किए जा रहे है आखिर क्यों ? इस बात पर किसी उच्चवर्गीय साहित्यकार ने या

लेखक ने गंभीरतापूर्वक कलम चलाने की, लिखने की चेष्टा ही नहीं की । इस देश में गायों की हत्या होने पर असेम्बली में, संसद में और देश के विभिन्न अंचलों में बहसे हो रही है, हंगामें किये जा रहे है, किंतु दलितों की सामूहिक हत्याये होने पर, सामूहिक बलात्कार होने पर कोई सभाएँ नहीं होती । केवल औपचारिकताएँ पूरी कर दी जाती है, आखिर क्यों ? किसी लेखक ने, इतिहासकार ने दलित जातियों की इस प्रकार की समस्याओं को उजागर करना आवश्यक क्यों नहीं समझा ? क्या यह सच नहीं है कि महार जाति के वीर सैनिकों द्वारा राष्ट्रीय हित में मुस्लिम बादशाहों, मराठा, पेशवा और अंग्रेज राजाओं की सेनाओं में ऐतिहासिक लड़ाईयाँ लड़कर विजय प्राप्त करवाई, किंतु भारतीय इतिहास में उनका कही कई उल्लेख नहीं है ? आखिर क्यों ?

(ख) वैश्विक धरातल पर दलित साहित्य :

आज विश्व एक 'विश्वग्राम' बन रहा है । वैश्विक धरातल पर प्रगतिशील देशों में भी दलित साहित्य की जानकारी प्राप्त हुई है और इस प्रगतिशील देशों में जब दलित साहित्य जैसे प्रश्न पर विरोध का माध्यम साहित्य बना तब उस संबंध में विकास हुआ और आज शिर को उठाकर जीने की प्रेरणा देता है । पिछले कुछ वर्षो से दलित साहित्य के विषय में अनेक बातें होती है और उसका उद्‌भव कहाँ से हुआ वह प्रश्न सता रहा है तब हम वैश्विक धरातल पर नज़र करें तो अमरीका और आफ्रीकी देशों के दलित साहित्य पर हमारी नज़र ठहरती है । हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी उसी चौट के जख्म को लेकर ही हमें आज़ादी दिलाई है ।

जिस साहित्य में मनुष्य समाज की पीड़ा दर्द और उनकी कुछ न कर पाने की बेबसी का चित्रण मिलता है, वह सब दलित साहित्य है ।

अमरीका का ब्लेक लिटरेचर (Black Literature of Amirican) :

सोलहवीं-सत्तरहवीं सदी में अफ्रीका के वायव्य दिशा से हजारों-लाखों की तादाद में आफ्रीकनों को उठाकर लाया गया । इसी दृश्य को और अनुभूतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी भूल नहीं पायी है । अश्वेतों को, आफ्रीकनों को, नीग्रो को कपास और तम्बाकु के खेतों में मज़दूरी करनी पड़ती थी । वैसे ही स्थिति युरोप में रही घरेलू कामकाज के लिए पूर्व अफ्रीका के अश्वेतों को लोभ-लालच देकर जानवरों की तरह रखा जाता था । गोलाकार वर्तुळ (वाड) में स्त्री और पुरुषों को एक साथ रखा गया था । तीन सदियों में

तीस लाख आफ्रीकनों को लाया गया । रास्ते में जो नादुरस्त होता था उसे दरिया में फेंक दिया जाता था । हबसी लोग पशुओं से भी बदतर जी रहे थे ।

उत्तर अमरीका के दक्षिण भाग में 'गुलाम राज्यों' का प्रारंभ हुआ । वर्जिनिया में पहली वसति गिनती (जनगणना) 1790 में दो लाख 'कालो' (Black) थे । जिन्हें मनुष्य ही नहीं वरन् कुर्सी या टेबल की तरह मिलकत (प्रोपर्टी) समझते थे । उसे बेचा या खरीदा जाता था । चुनाव में हिस्सा नहीं ले सकते थे । स्कोट नामक नीग्रो (अश्वेत) को न्यायाधीश ने कह दिया था - 'तुम तो नीग्रो हो, मनुष्य नहीं, नीग्रो तो मिलकत है और मनुष्य की मिलकत (प्रोपर्टी) को चुनाव लड़ने का अधिकार नहीं है ।'

मनुष्य साक्षर हो या निरक्षर उसका मन किसी भी किसी तरह अपनी अभिव्यक्ति व्यक्त तो करता ही है, चाहे वह बोलना या गाना हो अपनी मौलिक अभिव्यक्ति भी हो सकती है । अमेरिकन अश्वेत साहित्य के सर्जन में सोंग्स और नेरेटिव गीतों और आत्मकथन के दो स्वरूप दिखाई देते हैं । उनमें उनकी अनुभूति है, वेदना है, मन को झकझोरनेवाली संवेदना है । किसी के मन के भीतर से वेदना है तो सिर से टकरानेवाले तीर की तरह सत्य और यथार्थ से पूर्ण होता है ।

अश्वेत साहित्य में (ब्लेक लिटरेचर में) कथा साहित्य कम है क्योंकि वे मूल स्थान वतन (मातृभूमि) छोड़कर आये है । अश्वेत साहित्य में वीररस नहीं है क्योंकि दया, कृपा पर गुलाम निर्भर रहे हैं । चीथडेडाल कपड़े, न पैर में जूते अगर भाग जाने का साहित्य किया तो चौकीदार की बंदूके, कुत्ते की मौत की तरह जिंदगी में न विराम न सुख सिर्फ दुःख हो वहाँ साहित्य कैसा ?

एक मान्यता रही है अश्वेतों के पास किसी भी प्रकार का साहित्य नहीं है । साहित्य न होने का कारण उनकी संस्कृति शून्य हैं । अश्वेतों में आत्मा नहीं है । अफ्रीकन पिछड़े हुए, शारीरिक और मानसिकता का अभाव बिकाऊ चीज़ हो उसमें आध्यात्मिकता कैसी ? 1883 में गुलामी को नकारने वाला कानून इंग्लेंड की पार्लामेन्ट ने लिया उसके छेसौं साल के बाद प्रमुख लिंकन ने 'ईमान्सिपेशन प्रोब्लेमेशन' की घोषणा की और अश्वेतों को कानून से गुलमी में से मुक्त किया लेकिन बीसवीं सदी के दूसरे शतक में समानता के कानून पर प्रमुख लिंकन जोन्स ने दस्तखत किया फिर भी रंगभेद की नीति तो आज भी चल रही है ।

1501 में कालंबस ने अमरीका खंड का आविष्कार किया । पेरू

राज्य में इनकी संस्कृति नष्ट होने के बाद 1562 में ज्होन होकिन्स हाइरी 300 गुलाम आफ्रीकनों को लाया था । 1619 में वर्जिनिया में नौकरों के रूप में अश्वेतों को लाया गया । 1645 में अश्वेतों ने केरोबियन टापु पर विद्रोह किया लेकिन उनको कुचल दिया । पशुओं जैसा व्यवहार किया गया । स्त्री को डायन (डाकण) मानकर उसका वध कर दिया जाता था ।

ब्लेक लिटरेचर :

ब्लेक लिटरेचर 1760 में बोस्टन से चौदह पन्ने का प्रकाशन प्रकाशित हुआ । ब्रिटन हेमन (Britain Hammon) नामक अश्वेत का लेख था - A narrative of the uncommon sufferings and surprizing deliverance of britain human anergro.

जिसमें गुलामी से मुक्ति पाने के लिए भाग छूटने का और बाद में गिरफ्तारी का वर्णन है । गीत गाये जाते थे खेतों में, रसोईघरों में, अकेलेपन में, समूह में पहले अफ्रीकन भाषा में थे । बाद में कालक्रम में मूल भाषा को छोड़कर अंग्रेजी में रचनाएँ होने लगी । जहाँ मुद्रण नहीं था वहाँ लोकजीभों से, लोकगीत गाये जाते थे, चाहे वह किसी भी भाषा के क्यों न हो । और Bumby-e शब्द गीतों को भाववाही बनाते है । अमरीका में होते हुए भी अवहेलना, मानहानी, गुलामीवस्था की वेदना प्रतिबिंबित होती है ।

Fe-Le-Well Shisha Maley
We raise de wheat
हम गैहूँ पैदा करनेवाले को
Day gib us de Corn
वो हमें मक्का-मकाई दे (खाने के लिए)
We buke de bread
हम ब्रेड बनाए
Dey gib us de Crust
वो हमें टूकड़े दें
We sif de meal
हम खाना पकाये
Dey gib us de meat
वो हमें झूठन दे ।

1867 में एलन, वेर और गेरिस ने न्यूयोर्क से 'Slave songs of the united state' प्रकाशित किया । 1899 में बार्टन ने बोस्टन से 'Old Plantations humans' फ्रेडरिक ओमस्टिडे 'A Sourney in the Sea-board Slave state' न्यूयोर्क से प्रकाशित किया । 1971 में 'Black American Literature' - 1760 - Present अश्वेतों ने निर्माण किए गए साहित्य की सूची संपादित की है ।

'The health anthology of American literature' दो भागों में प्रकाशित हुआ है । अमरीकन समाज, साहित्यकार एवम् विश्वविद्यालय 'ब्लेक लिटरेचर' की उपेक्षा नहीं कर सकते 'ब्लेक लिटरेचर' ने अपना स्थान अंकित किया है 'The Norton Anthology : African, American literature' 1997 में प्रकाशित हुआ जो अपने बल पर था ।

पिंजड़े के पक्षी की मनोव्यथा कौन जान सकता है ? मनुष्य भी न समझ सके ऐसी अभिव्यक्ति पक्षी की होती है । उसी प्रकार की स्थिति का वर्णन इन पंक्तियों के द्वारा किया गया है जो अमरीका के और अफ्रीकी लोगों की रही होगी जो इस प्रकार व्यक्त हुई है -

Soon I will be done with the trouble of the world.
Troubles of the world, the roubles of the world.
Soon, I will be done, with the trouble of the world.
Going home to give with the god.
No more weeping and a wailing.
No more weeping and a wailing.
No more Weeping and a wailing.
I am going to live with the god.

अनुवाद :

छुटूंगा मैं इस दुःखदायक दुनिया से जल्दी से
दुःखदायक दुनिया दुःखदायक दुनिया
छुटूंगा मैं इस दुःखदायक दुनिया से जल्दी से
प्रभु के घर उसके पास रहने
अब नहीं रोना और बिलखना
अब नहीं रोना और बिलखना

अब नहीं रोना और बिलखना

मैं तो चली प्रभु संग रहने को ।

स्लेव सोंग्स में हृदय की चोट को शब्दों में लयबद्ध करना इससे विशिष्ट अश्वेत संगीत का भी विकास हुआ जो न्यु ओर्लियन्स म्युज़िक कहा गया । लुई आर्मस्ट्रोना न्यूयोर्क के डयूक आदि गायक हुए जिन्होंने मरने के बाद भी गुलाम मुक्ति के आनंद का अनुभव करते है ।

Throw me any way, In that oled Field

फेंक दो मुझे यही कहीं, वो ही पुराने खेत में

I don't care what you throw me In that oled field

नहीं मुझे कोई परवा, उसका दुःख उसका, वोही पुराने खेत में (आध्यात्मिक गीत)

ब्रिटन, हेलन ब्लेक लिटरेचर के पिता है चार्ल्स फ्रेड हार्टमा ने न्यूयोर्क 1915 में कविताओं का प्रकाशन किया, जिसमें अश्वेत ज्युपिटर हेमन की कविताएँ थी -

Jupiter Hammon,

American negro poet, selections from his writing and a Bibliography. जिसका संपादन ओस्कार वेगेलिनने किया था । हेमन की कविताओं की भाषा और शैली सरल हैं । जिसमें स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा है ।

Salvation comes by christ alone

The only son of god

Redemption now to every one.

'That loves his holy world' फिलिस व्हिटली ने (1754-1784)में लिखा - "What can his dear American return ? But drop a tear upon his happy urn."

तेरा प्रिय अमरीका क्या वापस दे सकेगा । मात्र एक आँसू की बूँद ।

अपनी दास्तान गुस्तावस वाजा (Gustavus Vassa)ने The interesting Narrative of the old audah Equianar or Gustavus Vassa, The African में है ।

बेन्जामिन बेनेकर रेयरन्ड रीचर्ड एलन, एसालोम जोन्स आदि ने अपनी आपबीती वेदना की ज्योर्ज मोरिझ होर्टन अपनी कविता में व्यक्त करते है -

Alas ! and am I born for this

To wear this slavish chain.

'मृत्यु ही मुक्ति है', मृत्यु ही गुलामी का अंत ला सकती है आत्मकथानक साहित्य में ल्यूसी टेरी ओलोडाट एकिओना फिलिस व्हिटली, डेविड वोकर हेरिपट आदि ने लिखे ।

अश्वेतों में नवजागृति आने लगी तो बूकर ही शार्लोट ग्रम्फे, आनाकपूर, डबल्यू दुब्बा, पोल डन्बाट ओलिस नेलसन ने हलचल मचा दी ।

ब्रूकर टी वोशिंग्टन की आत्मकथा 'Up from Salvery' फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन, रशियन और युरोप की छ भाषाओं में अनुवाद हुआ । गुजराती भाषा में भी प्रा. ठाकोर ने आत्मकथा का अनुवाद किया है और 'सस्तु साहित्य' वर्धक कार्यालय ने 1950 में प्रकाशित किया है -

To be a negro in a day like this.

Alas ! lord god; what evil have we done ?

नीग्रो होवु आवा दिवसोमां हे प्रभु अमे ओवा

शा पाप करीया - पोल लोरेन्स डन्वार

बीसवीं सदी में परिवर्तन आया । 1919 में 70 अश्वेतों की हत्या की गई । गोरा-अश्वेतों का हादसा हुआ । 1925 में अमरीका की राजधानी वोशिंग्टन में रंगभेद की सराहना हुई । 1929 में शेर बाज़ार तूटा । 1935 में कोमी दंगे हुए इसी समय आर्थर शोम बर्ग, अेन्जेलिना ग्रिमेक, एन सेन्सर जेसी कोसेट, जेझटन ज्होन्सन ज्योर्जशीलर, वोलेट दूरमान आदि ने सभी विद्याओं में निर्माण किया ।

19 अगस्त 1963 के दिन मार्टिन ल्यूथर किंग, जुनियर की कूच वोशिंग्टन में पूर्ण हुई तभी दिए गए भाषण में व्यक्त किया था । किंग की हत्या मेम्फिस (टेनीसी राज्य) 4 अप्रैल 1968 में हुई उनकी कबर पर लिखा गया । बीसवीं शताब्दी के अंत में 'ब्लेक पावर मुवमेन्ट' । पोल मार्शल, एड्एन कैनेडी, टीनी मेस्सिन, (नोबल पारितोषक विजेता) अर्नेस्ट गेहन्स, ओड्रे लोर्ड, कोलिन मेकिलरोय, जून जोर्डन, वान्डाकोलमेन, रीटार्डाव वोल्टर मोसले आदि अश्वेत साहित्यकार है ।

ब्लेक लिटरेचर न सिर्फ गीतों में बल्कि कविताओं, धार्मिकगीत, प्रचवन, लोककथा, लोकसाहित्य आदि स्वरूपों में है । नया धर्म (इलाई) और नयी भाषा अंग्रेजी का स्वीकार किया है लेकिन अपनी जीवनशैली को नहीं

बदला, 350 साल हो गए है । सभी विधाओं में काम हुआ है लेकिन शैली तो विशिष्ट ही है ।

मनुष्य की भीतरी वेदना वाक्, जिह्वा, कलम, पीछी या किसी भी माध्यम से व्यक्त होती रही है । जहाँ कोई माध्यम नहीं रहा तो मनुष्य ने अंगो का, नेत्रों का, अंगुलियों की भाषा से मनुष्य अपने को अभिव्यक्ति करता रहा है । अगर कुछ नया सीख लिया - अनुभव किया तो तुंरत ही उसकी अभिव्यक्ति होती ही है । यही तो मनुष्य की असलियत है । उसीमें मन के सभी भाव, आशा, निराशा, हताशा, परितोष, पीड़ा, वेदना, यातना, आश्चर्य, अहोभाव अतः साहित्य के नौ रस एक या दूसरी रीत-पद्धति से अभिव्यक्त होते ही हैं ।

हम यदि दूसरे देशों के समाज के 'ब्लेक लिटरेचर' में दिलचस्पी रखते है तो अपने यहाँ (भारत) के 'ब्लेक लिटरेचर' जैसा दलित साहित्य के बारे में सोचा है ? हमने सोचा है कि पीड़ितों का भी एक विश्व है ? उनकी प्रतिभा खड़ी कर दी है । उन्हें भी हमें देखना होगा । आइए हम अफ्रीकी धरती की सुगंध में दलित साहित्य को पहचाने !

अफ्रीकी साहित्य में रंगभेद और दलित चेतना :

पिछले कुछ वर्षो में अफ्रीकी साहित्य ने पूरे विश्व का ध्यान आकृष्ट किया है । भारतीय साहित्यकार और बुद्धिजीवी भी इससे प्रभावित हुए हैं । इधर के कुछ वर्षो में जब से हिन्दी साहित्य में 'दलित साहित्य' की बात लगी है, तब से अफ्रीकी साहित्य की ओर हमारा ध्यान ज्यादा आकर्षित हुआ है । इससे पता चलता है कि अफ्रीकी साहित्य और भारत के दलित साहित्य में कुछ समानता है । जिस तरह हमारे समाज में दलितों की सामाजिक उपेक्षा की गयी, ठीक उसी तरह अफ्रीका में भी रंगभेद के कारण वहाँ के मूल निवासियों की उपेक्षा की गयी । इसका एक बड़ा कारण अफ्रीका की उपनिवेशावदी समाज होना रहा है । जिस तरह भारत के दलितों को विभिन्न तिकड़मों से उनके सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया वैसे ही अफ्रीका के अधिकांश देशो जिन पर यूरोपीय उपनिवेशवाद का साम्राज्य था, वहाँ के मूल निवासियों को सताया गया तथा वहाँ हुई उन्नति के लाभों से उन्हें वंचित रखा गया । फर्क यह था कि भारत में धर्म की आड़ में एक खास किस्म की वर्ण-व्यवस्था लागू कर उन्हें उनके अधिकारों से वंचित रखा गया । अफ्रीका में भी रंगभेद के आधार पर विभेद करके अफ्रीकी समाज को

विकास की प्रक्रिया से अलग रखा गया । धर्म ने वहाँ के समाज को विकास की प्रक्रिया से अलग रखा गया । धर्म ने वहाँ के मूल निवासियों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया । धर्म बदलनेवालों को ही शिक्षा और नौकरी में कई प्रकार की सुविधाएँ दी गयी, जबकि भारत में कभी भी हिन्दू धर्म ने दलित समाज को अपने सामाजिक जीवन की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास नहीं किया । कभी भी दलित हिन्दू को सवर्ण हिन्दू में बदलने की कोशिश नहीं की गयी । इन्हें शिक्षा से वंचित रखा गया, जिससे इसका सामाजिक उत्थान ही न हो सके ।[22]

भारतीय दलित साहित्य की तरह अफ्रीकी साहित्य में भी प्रतिरोध की भावना दिखाई देती है । वहाँ हुए जन आंदोलनों में मुख्यतः राजनीतिक और सामाजिक रूप से अफ्रीकी समाज को जागृत किया, किंतु वहाँ उभरा आंदोलन किसी वर्ण विशेष या जाति के लिए नहीं था जैसा कि भारत में अम्बेड़कर जैसे राजनीतिक रूप में सचेत विचारक ने किया । इसका कारण आर्थिक था क्योंकि द्वितीय विश्व-युद्ध ने अधिकांश यूरोपीय देशों की आर्थिक हालत खराब कर दी थी तथा उन देशों को लगने लगा था कि अब वे ज्यादा समय तक अफ्रीकी, लैटिन, अमरीका आदि देशों का और तेज़ी से आर्थिक शोषण शुरु किया । वे चाहते थे कि अपने देशों की ध्वस्त आर्थिक व्यवस्था का पुनःनिर्माण हो सके । अफ्रीकी समाज पर भी उनकी इस मानसिकता का गहरा असर हुआ तथा पचास के दशक में वहाँ के लेखकों, बुद्धिजीवी और पत्रकारों ने जो अपने देशों से परे यूरोप के विभिन्न देशों में रहे थे कई गोष्ठियाँ और बैठक की तथा फैसला किया कि वे अब संगठित होकर अपने देश के आर्थिक शोषण और मानसिक यातना का विरोध करेंगे ।

विरोध का यह मुखर स्वर सर्वाधिक रूप से उनकी लेखनी में उभर कर आया । सन् 1956 में पेरिस में एक गोष्ठी हुई । इसका आयोजन सौरबन विश्वविद्यालय में अफ्रीका पर केन्द्रित एक पत्रिका 'प्रेजेन्स अफ्रीक्स' (आज का अफ्रीका) के संपादक - एलियन दियोग ने किया था, जिसमें अफ्रीकी बुद्धिजीवियों, पत्रकारों और लेखकों ने शरीफ होकर फैसला किया कि अब अपने देश की आज़ादी के लिए वे कहानी, कविता, लेख आदि लिखेगें, जिससे लोगों की मानसिकता को अपने अनुकूल बनाया जा सके तथा अपने आपकों राजनीतिक रूप से आज़ाद किया जा सके तथा अपने आपकों राजनीतिक रूप से आज़ाद किया जा सके, क्योंकि वे महसूस करने लगे थे कि

बिना राजनीतिक आज़ादी हासिल किए सांस्कृति आज़ादी संभव नहीं है । बाद में इन्हीं बैठकों ने 'अफ्रीकन लेखन संगठन' का रूप ले लिया तथा चार वर्षो के बाद इसकी बैठक रोम में हुई । पूरे विश्व समुदाय को अपनी लड़ाई में शामिल करने तथा एशिया के लेखकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए काटिरा में 'अफ्रीकन एशियन राइटर्स एसोसिएशन' का गठन किया गया । यहाँ इन तथ्यों की चर्चा करने का एकमात्र मकसद यह है कि अगर आप 1955 के बाद का अफ्रीकन साहित्य देखेंगे अथवा चिनुआ अचेबे कृत उनका पहला उपन्यास 'थिंग्स फॉल अपार्ट' (1958) देखें तो इससे साफ पता चलता है कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया को अफ्रीकी लेखकों ने किस प्रकार अपनी लेखनी से जोड़ा तथा मुक्ति की लड़ाई में गोरी सरकारों द्वारा जारी रंगभेग की नीतियों का किस तरह जमकर विरोध किया । इन अफ्रीकी लेखकों ने अपनी कहानियों, कविताओं और उपन्यासों की भाषा, कथानक, पात्रों आदि के चयन में इस बात का ध्यान रखा कि उनके दबे-कुचले समाज को प्रेरणा मिल सके तथा वे अपने अंदर ऐसी चेतना का विकास कर सके कि मुख्यधारा का समाज उनके साथ दलितों की तरह व्यवहार नहीं कर सके ।[23]

भारत के दलित साहित्य और अफ्रीकी साहित्य पर तुलनात्मक दृष्टि डालने पर पता चलता है कि दोनों साहित्य की धारा और उनकी मानसिकता में बहुत फर्क नहीं है । फर्क है तो सामाजिक स्थितियों में । भारत का दलित समाज जहाँ वर्णवाद का शिकार है तथा इसको धार्मिक मान्यता प्राप्त है । वहीं अफ्रीकी समाज अपने काले रंग के कारण दलित और शोषित रहा है, लेकिन इसके साथ ही अफ्रीकी समाज यूरोपीय सरकारों की आर्थिक शोषण की नीतियों का भी शिकार रहा था, धार्मिक नीतियों का नहीं । इसायत ने एक हद तक साम्राज्यवाद का साथ दिया, फिर भी वहीं की परिस्थितियाँ भिन्न थी। धर्म ने उनका शोषण किया जैसा कि भारत में दलितों के साथ हुआ । इसायत ने एक हद तक साम्राज्यवाद का साथ दिया फिर भी वहीं की परिस्थितियाँ भिन्न थी । धर्म ने उनका शोषण किया जैसा कि भारत में दलितों के साथ हुआ । इसायत ने एक हद तक साम्राज्यवाद का साथ दिया फिर भी वहीं की परिस्थितियाँ भिन्न थी । धर्म ने उनका शोषण किया जैसा कि भारत में दलितों के साथ हुआ । इसायत ने एक हद तक साम्राज्यवाद का साथ दिया । लेकिन उससे लोगों को शिक्षा और अन्य सुविधाओं का फायदा जरूर हुआ, जिसका असर अफ्रीकी साहित्य में भी दिखलाई पड़ता है ।[24]

अफ्रीकी साहित्य की पहचान जिन लेखकों के माध्यम से बनती है, उनमें चिनुआ अचेबे, न्यूगी वा थियौंग ओ, सेमेन उस्माल, नैदीन गार्डिमर, अलैक्स ला गूमा, कैन टेमया, ऐसीस टुटुओल, आमा आयतु, फरीदा

किरोडिया, ऐलन पेटन आदि प्रमुख हैं । लेखकों ने एक ओर जहाँ भारत के दलित लेखकों की तरह अपनी आपबीती को जगबीती बनाया वही दूसरी ओर अपने देश के इतिहास की उन घटनाओं और प्रसंगों को एक बार फिर से टटोला जिनके माध्यम से उनकी बदहाल, हालत साम्राज्यवादी शासक वर्ग की क्रूर मानसिकता तथा उनके देश समाज और संस्कृति पर रंगभेद के कारण पड़ रहे दुष्प्रभावों का असर दिखलाई पड़ता है ।[25]

अफ्रीकी साहित्य और भारत के दलित साहित्य में कुछ समानता है । जिस तरह हमारे समाज में दलितों की सामाजिक उपेक्षा की गयी, ठीक उसी तरह अफ्रीका में भी रंगभेद के कारण वहाँ के मूल निवासियों की उपेक्षा की गयी । इसका एक बड़ा कारण अफ्रीका का उपनिवेशवादी समाज होता रहा है ।

अफ्रीकी साहित्य की एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि वहाँ के साहित्यकारों ने अपनी कहानियों और उपन्यासों का मुख्य विषय किसी व्यक्ति को न बना कर अपने देश का इतिहास बनाया है । खासकर प्रारंभिक अफ्रीकी साहित्यकारों की महत्वपूर्ण विशेषता यही रही है । लेकिन इस इतिहास में दलित साहित्यकारों की तरह आत्मकथा पर जोर नहीं है । उन्होंने इस प्रकार के कथानक में अफ्रीकी जीवन के उन हिस्सों को ज्यादा उठाया जो अपने से अधिक उनके किसी न किसी ऐतिहासिक घटना से संबंधित थे । उदाहरणत: चिनुआ अचेबे ने अपने पहले उपन्यास 'थिंग्स फॉल अपार्ट' (1958) में पूर्वी नाइजीरिया के इबों लोगों की उस ऐतिहासिक स्थिति का चित्रण किया, जब वे अंग्रेजी साम्राज्यवाद की फैलती जड़ों के कारण एक खतरनाक मोड़ पर जा खड़े हुए थे । अंग्रेजी साम्राज्यवाद शासन और मिशनरियों के साथ मिलकर जिस प्रकार आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक रूप से अफ्रीकी समाज को खत्म कर रहे थे । वह कितना क्रूर और भयानक था, इस उपन्यास को पढ़ने से पता चल जाता है । यह किसी व्यक्ति की कहानी नहीं है, बल्कि एक छोटे से गाँव को कथानक बनाकर चिनुआ अचेबे ने अपने अतीत पर एक नज़र डाली तथा मुक्ति की इस लड़ाई में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

इस प्रकार नगूगी वा थियौंग ओ ने तब के अफ्रीकी समाज को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया, जब केन्या में अंग्रेज अपना पैर जमा रहे थे । उस वक्त के केन्याई समाज में उपनिवेशवाद और नव उपनिवेशवाद निर्मित विकृतियों के प्रति उन्होंने लोगों को सचेत और सजग किया । अपने दो उपन्यास 'वीथ नॉट चाइल्ड' (1964) और 'द खिर बिटन' (1965) के

कथानक को उन्होंने केन्याई स्वतंत्रता आंदोलन के उस हिस्से को चुना जिसमें अफ्रीकी समाज में प्रचलित कुछ रस्मों-रिवाजों को क्रूर कहते हुए यूरोपीय साम्राज्यवाद ने खत्म करने का आदेश दिया था । जैसे - बहुपत्नीवाद की प्रथा । इस प्रथा की निंदा करते हुए अंग्रेजों ने हुक्म जारी किया कि जो भी इस प्रथा को मानेगा, उनके बच्चों को शिक्षा से वंचित कर दिया जाएगा । परिणाम यह हुआ कि लोगों ने बहुपत्नीवाद से मुँह मोड़ लिया । इसी प्रकार उन्होंने लड़के-लड़कियों की सुन्नत करने की प्रथा को बंद किया । उन्होंने यह भी कहा कि जो इसे नहीं मानेगा उसे चर्च में प्रवेश करने नहीं दिया जाएगा, क्योंकि ये दोनों प्रथाएँ ऐसी थी, जो वहाँ के समाज में सदियों से विद्यमान थी । हम इन प्रथाओं का समर्थन नहीं करना चाहते है परंतु इस बात को जरूर रखना चाहते है कि युरोपीय उपनिवेशवाद ने अफ्रीकी समाज की धार्मिक मान्यताओं को विनाश कर अपना धर्म अपने रीति-रिवाज को वहाँ लागू किया और केन्या की लड़ाई में ये दोनों प्रथाएँ बड़े मुद्दे बने । परिणामतः केन्याई समाज ने इसका प्रतिरोध करने के लिए अपने स्कूलों और अलग से चर्च बनाने की बात की, जिसने उनकी लड़ाई को मजबूती दी तथा आम अफ्रीकीओं को इस आंदोलन से जोड़ा । मुक्ति की इस प्रक्रिया की अफ्रीकी साहित्य ने अपनी आवाज़ दी तथा वहाँ के जन-जीवन से जुड़ी समस्याओं लोगों की सोच और उनकी सामाजिक स्थिति को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया ।

आज भी वहाँ स्थिति बहुत बेहतर नहीं है । वहाँ के लेखकों और सामान्य लोगों को इस बात की आशा थी कि मुक्ति के बाद उनकी स्थिति बदलेगी, परंतु पूर्णतः ऐसा नहीं हुआ । आज़ाजी के बाद जो सरकारे वहाँ सत्ता में आयी तथा आम आदमी को उनसे जो आशाएँ थी, वे पूरी नहीं हुई । परिणामतः एक बार फिर वहाँ के लेखकों ने अपनी कलम उठायी । उनके पूर्व के लेखन तथा उनके अबके लेखन में फर्क मात्र इतना है कि पहले वे यूरोपीय साम्राज्यवाद के खिलाफ लिख रहे थे और अब अपने शोषणकारी शासकों के खिलाफ उन्हें लिखना पड़ा रहा है । अभी भी उनका साहित्य 'प्रतिरोध का साहित्य' बना हुआ है । पिछले दश वर्षो में उनकी आर्थिक हालत और खराब हुई है । राजनीतिक स्वतंत्रता भी छिनी है, क्योंकि सैनिक शासक अपने आपको सत्ता में बनाये रखने के लिए जिस प्रकार नव स्वतंत्र अफ्रीकी देशों को जाति, भाषा, धर्म के नाम पर बाँटते रहे है, वह खतरनाक है। आज भी जो उनके खिलाफ

आवाज़ उठाता है उस पर अत्याचार शुरु हो जाता है । इसका प्रमाण मशहूर लेखक केन सारोविव है जिन्हें पिछलें दिनों नाईजीरिया की सैनिक सत्ता ने विद्रोह के नाम पर फाँसी पर लटका दिया । वे अपने लेखन के माध्यम से ओगोन प्रदेश के दूषित किए जा रहे वातावरण के खिलाफ सरकार का विरोध कर रहे थे। वोलेशियका चिनुआ अचेबे जैसे लेखक जो अपने लेखन के जरिये अपने समाज पर हो रहे अत्याचारों का विरोध कर रहे थे, आज अपने ही देश में नजरबंद है । नगूगी, अलैक्स ला गूमा, कैन टेम्बा, केसी हड़े, डेनिसब्रटस जैसे लेखकों को तो देश ही छोड़ देना पड़ा ।[26]

दरअसल जिस ढंग से अफ्रीकी समाज का राजनीतिक और आर्थिक विकास हुआ है, वह कई तरह की विडम्बनाओं को हमारे सामने लाता है । इसका गहरा असर वहाँ के साहित्य में भी दिखाई पड़ता है । परिणामत: आज भी वहाँ प्रतिरोध का साहित्य लिखा जा रहा है कि आज भी वहाँ के लेखक अपनी कलम का इस्तेमाल तलवार की तरह कर रहे हैं । तथा अपने देश की आम जनता की आवाज़ उठा रहे हैं । आज भी वे 'हेव नॉट' अर्थात् 'कुछ नहीं है' की लड़ाई लड़ रहे है ।[27]

(ग) भारत में दलित साहित्य यात्रा :

भारत में 'दलित साहित्य' के उद्‌भव और विकास संबंधी यात्रा के दौर पर विचार करते समय यह प्रश्न अचानक मस्तिष्क में कौंधते है कि दलित साहित्य का उदय पूरे देश में एक साथ क्यों नहीं हुआ ? महाराष्ट्र में दलित साहित्य का उदय पहले क्यों हुआ और बाकी उत्तरी भारत और अन्य राज्यों में उसके बाद दलित साहित्य विलम्ब से क्यों अस्तित्व में आया ? मराठी दलित साहित्य के तेवर हिन्दी दलित साहित्य से भिन्न क्यों हैं ? मराठी दलित साहित्य महाराष्ट्र में राजनैतिक समीकरण बदलने में सफल क्यों नहीं हुआ है ? दलित साहित्य यात्रा से संबंधित उपरोक्त प्रश्नों का हल जानने के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर पहले गौर करना होगा ।

(1) महाराष्ट्र और उत्तरी भारत में दलित साहित्य की पृष्ठभूमि क्या रही हैं ?

(2) महाराष्ट्र दलित साहित्य और दलित साहित्य के प्रेरक पुरूष कौन है ?

(3) उन प्रेरक पुरूषों की विचारधारा और व्यक्तित्व में क्या अंतर रहा है ?

(4) दलित साहित्य किन परिस्थितियों में किन आवश्यकता पूर्ति के लिए अस्तित्व में आया ?[28]

मराठी दलित साहित्य का उद्‌भव जहाँ इस सदी के छठें दशक को

माना जाता है वही उत्तरी भारत में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव आठवें दशक को माना जा सकता है । महाराष्ट्र में दलित साहित्य की जो भूमि संत चोखमेला, महात्मा ज्योतिराव फुले ने ब्राह्मणवाद के खिलाफ अपने सामाजिक कार्यो और जन जागरण से तैयार की बाबा साहब अम्बेड़कर ने **'महाड़ तालाब'** और **'कालराम मंदिर सत्याग्रह'** आंदोलनों से इसमें संघर्ष का बीज़ बोया, और उसे उर्जा दी उनके **'मूकनायक'** व **'बहिष्कृत'** भारत समाचार पत्रों के 1930-31 की लंदन की गोलमेल कोन्फ्रेस में बाबा साहब की विद्वता, तर्कशक्ति व राजनैतिक कुशलता से परिपूर्ण भाषण ने भारत में दलितों की दुर्दशा और सवर्णो की सामंतशाही को उजागर करके रख दिया वहाँ दलितों को हिन्दूओं से अलग दर्शाकर बाबा साहब जहाँ उन्हें भारत की सत्ता और सम्पदा में पृथक हिस्सेदारी दिलाना चाहते थे वहीं महात्मा गाँधी दलितों को हिन्दूओं का अंग बताकर उन्हें वही सड़ने पर बाध्य कर रहे थे । अंग्रेज शासकों ने बाबा साहब की सच्चाई को समझकर दलितों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया । महात्मा गांधी को इससे हिन्दू अल्प संख्यक रहने पर हिन्दू धर्म रसातल को जाता नज़र आया । इसीलिए उन्होंने दलितों को 'कम्युनल अवार्ड' के तहत मिले पृथक निर्वाचन के खिलाफ आमरण अनशन की घोषणा कर दी । बूढ़े गांधी के मरने का कलंक बाबा साहब अपने सिर पर नहीं लेना चाहते थे, अतः उन्होंने 24 सितम्बर 1932 को **'पूना पैकट'** को मान लिया जिसके तहत गांधीजी ने दलितों को अन्य वर्णो के सामने लाने के लिए आरक्षण का प्रावधान रखा, बाबा साहब के इस संघर्ष ने कालांतर में 'दलित साहित्य' को जन्म दिया । चूंकि बाबा साहब की जन्मभूमि, कर्मभूमि और धर्म-दीक्षा भूमि महाराष्ट्र थी, इसलिए वहाँ दलितों ने जहाँ सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और शैक्षणिक क्षेत्र में पहल की, वहीं स्वयं भोगे गए जीवन और आत्मानुभव के आधार पर मराठी साहित्य से हटकर नए मराठी दलित साहित्य सृजन में भी पहल की ।

1953 में प्रा. सुखराम हिवराले की अध्यक्षता में बम्बई में 'दलित साहित्य परिषद' के बैनर तले दलित साहित्यकारों का पहला अधिवेशन हुआ । इसके बाद ही दलित साहित्यकारों में जागृति आई जिसके फलस्वरूप पूरे महाराष्ट्र में दलित सम्मेलन अधिवेशन, चर्चाये, परिचर्चाये, गोष्ठी, संगोष्ठी आरंभ हुई । मराठी की दलित पत्र-पत्रिकाओं ने दलित साहित्यकारों की रचनाएँ

छापकर प्रोत्साहित किया । 'रसराज', अस्मिता, अभिव्यक्ति, अनुभूति आदि पत्र-पत्रिकाओं ने दलित साहित्य को उभारने में शुरु में काफी मदद की । 1961 में 'अस्मिता-दर्श' त्रिमासिक पत्रिका प्रारंभ हुई जिसने मराठी दलित साहित्य आंदोलन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया । इसने 'लेखक मेला' प्रारंभ किए । इन मेलों में निबंध वांचन, कवि सम्मेलन, परिचर्चा, कहानी, वाचन, ग्रंथ प्रदर्शन, चित्र प्रदर्शनी तथा स्मारिका प्रकाशन आदि कार्यक्रम आयोजित किए गए । 1974 से 'अस्मितादर्श' ने प्रतिवर्ष जो 'लेखक मेले' का आयोजन प्रारंभ किया उसमें जहाँ साहित्य की सभी विधाओं में हजारों दलित साहित्यकार और लेखक पैदा हुए, वही काफी मात्रा में मराठी दलित साहित्य का सृजन हुआ । इसी दलित साहित्य का इसकी भाषाओं में अनुवाद होकर जब सामने आया तो उसने अन्य साहित्यकारों को सोचने पर विवश कर दिया । इसीसे प्रभावित होकर श्री कमलेश्वर ने 1976 में 'सारिका' मासिक पत्रिका के 'दलित साहित्य' विशेषांक प्रकाशित किए जिसने सवर्ण साहित्यकारों के साहित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाकर उन्हें दलितों की वास्तविकता पर सोचने के लिए मज़बूर किया ।

मराठी दलित साहित्य का प्रेरणास्रोत जहाँ डॉ. अम्बेड़कर है वहीं उत्तर भारत में दलित साहित्य के प्रेरक में बाबू जगजीवन राम को मानते है । यद्यपि हिन्दी के दलित साहित्य के आधार में डॉ. अम्बेड़कर का आंदोलन ही है पर बाबूजी के शिक्षा निर्देश में उसे पनपने और आगे बढ़ने का जो मौका मिला उसे भुलाया नहीं जा सकता । मराठी दलित साहित्य और हिन्दी दलित साहित्य के उद्भव में जो दशक का अंतर है वह दलितों के मसीहा डॉ. अम्बेड़कर और बाबू जगजीवन राम के सानिध्य के अलावा भाषा प्रदेश और काल के कारण भी है ।

उत्तरी भारत में दलितों को डॉ. अम्बेड़कर के मिशन को समझने में थोड़ी देर लगी । इसका मुख्य कारण उनके साहित्य की सहज अनुपलब्धता उनके सहज सानिध्य की अप्राप्तता और उस समय शिक्षित युवा पीढ़ी का अभाव है । देश की आज़ादी प्राप्ति के बाद जन्में दलित युवा की तस्वीर देखकर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की कल्पना कर सकते है, पर उनमें से किसी ने साक्षात् दर्शन की सीधी प्रेरणा प्राप्त नहीं की इसका सबसे बड़ा कारण 1956 में बौद्ध दीक्षा लेने के बाद ही उनका महापरिनिर्वाण हो जाता है । इसकी तुलना में उत्तरी भारत के अधिकांश दलित युवा पीढ़ी को बाबू जगजीवन राम का सीधा सानिध्य मिला । वे हंमेशा सत्ता में रहें, इस कारण

भी अधिकांश लोगों का उनसे सीधा एवं सहज सम्पर्क रहा फिर उनके भाषण, विचार, मातृभाषा हिन्दी में सहज सुलभ होने के कारण यहाँ दलित उनसे ज्यादा प्रभावित हुए ।

1963 में 'कामराज प्लान' के अंतर्गत मंत्रीपरिषद से अलग कर घर बैठा दिया गया । इसके बाद ही दलितों की मुक्ति और सामाजिक समता के लिए उनका उग्र रूप सामने आया । डॉ. अम्बेड्कर के महापरिनिर्वाण के बाद जो दलित अपने को 'असहाय और अनाथ' महसूस कर रहे थे उन्हें तब बाबूजी के विद्रोहात्मक उग्र स्वर में डॉ. अम्बेड्कर की छबी नज़र आने लगी । उन्होंने बाबूजी के साथ हुए विश्वासघात पर संवेदना व्यक्त करते हुए हकारा - "बाबूजी संघर्ष करों, हम तुम्हारे साथ है ।"[29]

बाबूजी के दिशा निर्देशन में पहला दलित समाचार पत्र सम्पादकों का सम्मेलन अगस्त 1981 को नई दिल्ली में बुलवाया । हरिजन सेवक संघ, किंगवेज कैम्प, दिल्ली के सभागार में 8 अगस्त को यह आयोजित किया गया । पूरे भारत में 1950 से ऊपर दलित समाचार पत्रों के सम्पादकों, लेखक व पत्रकारों ने सक्रियता के साथ इसमें भाग लिया । बाबूजी ने दलित पत्रकार और लेखकों को सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश करने, हिन्दू धर्म शस्त्रों का भंग-फोड करने और दलितोत्थान के लिए निडर होकर लिखने का आहवान किया । बाबूजी के निर्देशन पर दूसरा दलित समाचार पत्र सम्पादकों का सम्मेलन 6-7 अप्रैल 1983 को नई दिल्ली में बुलवाया गया । कास्टीटयूशन क्लब (नई दिल्ली) में इसका आयोजन किया गया । पूरे देश में लगभग 500 दलित समाचार पत्र सम्पादक, दलित लेखक, पत्रकार, इतिहासकार और दलित सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इसमें भाग लिया ।

6 अगस्त, 1985 को कास्टीट्यूशन क्लब, नई दिल्ली के सभागार में पहला राष्ट्रीय दलित साहित्यकार सम्मेलन आयोजित किया गया । पूरे देश से 500-700 दलित लेखक, पत्रकार, साहित्यकार और दलित कार्यकर्ताओं ने इसमें भाग लिया । बाबूजी ने इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना की घोषणा की । साहित्यिक क्षेत्र में यह दलित लेखन के नये कीर्तिमान स्थापित करेंगी । इससे दलित लेखकों का दिशा निर्देशन तो होगा ही, उनकी रचनाओं का मूल्यांकन कर उन्हें प्रोत्साहित भी किया जा सकेगा ।

इस दलित साहित्यकार सम्मेलन में दलित कविता, लघुकथा, कहानी, संस्मरण, आत्मकथा, पत्रकारिता, कला, धर्म, इतिहास पर खुलकर बहस हुई। विचार विमर्श हुआ दलित साहित्य की परिभाषा और उसी सीमाओं पर खुलकर विचार हुआ दलित लेखकों के लिए दिशा निर्देश निर्धारित किए गए उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए प्रतिवर्ष डॉ. अम्बेड़कर राष्ट्रीय व आंतरराष्ट्रीय पुरस्कार, डॉ. अम्बेड़कर सेवा पुरस्कार और डॉ. अम्बेड़कर फेलोशिप सम्मान दिए जाने की घोषणा की गई।

इसके बाद विधिवत् रूप से उत्तरी भारत में 'दलित साहित्य' लेखन का कार्य आरंभ हुआ। भारतीय दलित साहित्य अकादमी 1985 से दलित साहित्य यात्रा का प्रारंभ हुआ। 15 वर्षो के अंदर पूरे भारत के अलावा नेपाल, श्रीलंका, इंग्लैण्ड, अमरिका, केनेडा, बांग्लादेश तक पहुँच चुकी है। अकादमी की शाखाएँ 28 प्रदेश में है जिनसे विभिन्न भाषाओं के 10 हजार से अधिक लेखक जुड़कर दलित साहित्य सृजन में संलग्न है। अब तक देश की विभिन्न भाषाओं में दलित साहित्य की विभिन्न विधाओं पर हजारों पुस्तकें लिखी जा चुकी है। इससे प्रभावित होकर दलित समाज का कायापलट तो हुआ ही है, देश में धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक समीकरण भी बदले है। यदि दलित साहित्य यात्रा इसी गति से चली तो आगामी 21वीं सदी का असली 'दलित साहित्य' ही सर्वत्र नज़र आयेगा और इससे इतर साहित्य कूड़े के ढेर की शोभा बढ़ायेगा।

भारत (भारतीय साहित्य) में दलित साहित्य :

भारतीय भाषाओं का उद्‌गम स्थान संस्कृत भाषा है। संस्कृत के बाद की भारतीय भाषाएँ विद्यमान है। हिन्दी साहित्य में भी आदिकाल, रीतिकाल के बाद भक्तिकाल में दलित साहित्य का समन्वय है। कबीर और रैदास के पूर्व इस क्षेत्र में ऐसा कोई साहित्य दिखाई नहीं पड़ता जिसे दलित साहित्य से अभिहित किया जा सके। जबकि विश्व धरातल पर दलित साहित्य पहले और आज भी मिल रहा है। फर्क इतना है कि भोगे हुए भोगियों ने अपना ही वर्णन अपनी ही कलम से किया है।

भारत विविधता का देश है भारत में अनेक प्रांत, धर्म, भाषाएँ, बोलियाँ, रीत-रिवाज़, त्यौहार, अलग-अलग होते हुए भी उसमें राष्ट्रीय एकता समाविष्ट है। भारत में 28 राज्य हैं। भारत राष्ट्र का एक राष्ट्रगीत, एक राष्ट्रध्वज और राष्ट्र की एक सर्वमान्य राष्ट्रभाषा भी है। हिन्दी भारत की

राष्ट्रभाषा और राजभाषा भी है । भारत के अधिकत्तर प्रांतों (राज्यों) में हिन्दी भाषा का प्रशासन में, बोल-चाल में उपयोग करते है । भारत के अधिकतर लोग हिन्दी को समझते है । जिनकी मातृभाषा हिन्दी से मिली जुली पंजाबी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी आदि है । कन्नड, उड़िया, तेलुगु, मलयालम भाषा का भी प्रयोग होता है । भारत के उत्तर, पश्चिम, दक्षिण भागों में दलित साहित्य बिखरा पड़ा है । हम इन भाषाओं का दलित साहित्य जानने से पहले राष्ट्रभाषा हिन्दी में दलित साहित्य की क्या स्थिति है उसे जानने का प्रयास करेंगे ।

कवि हीरा डोम या अछूतानंद :

हिन्दी दलित साहित्य में हीरा डोम को पहला दलित कवि मान लिया गया है । भोजपुरी भाषा में उनका एक गीत 'सरस्वती' के सितम्बर 1914 में प्रकाशित हुआ था । हीरा डोम के इस गीत का शीर्षक 'अछूत की शिकायत' है । निस्संदेह इस गीत में अछूत जीवन की मार्मिक वेदना की अभिव्यक्ति है । हीरा डोम ने अछूत की शिकायत को ईश्वर के दरबार में प्रस्तुत किया है । यथा -

"खंभवा के फारि पहलाद के बंचवले जा,
ग्राह के मुँह से गजराज के बचवले ।
धोती जुरजोधना के भइया छोरत रहै ।
परगंट होके तहाँ कपड़ा बढ़वले
मरले खनवा के पलले भभिखना के
कानी अंगुरी पै धै के पथरा उठवले ।
कहवां सुतल बाटे सुनत न बाटे अब
डोम जानि हमनी के छुए से डसेले ।।"[30]

भावार्थ :

उस ईश्वर के दरबार में, जो खम्भा फाड़कर प्रहलाद को बचाता है, जो गजराज की मगर से रक्षा करता है, जो दूर्योधन से द्रोपदी की लाज बचाता है, जो स्त्री, पुरुषों, बूढ़ों और बच्चों की रक्षा के लिए पर्वत को उठा लेता है । वह भगवान अछूतों की अस्मिता की रक्षा क्यों नहीं करता ? कवि कहता है कि डोम जानकर वह भी हमें छूने से डरता है ?[31]

दलित कविता के प्रतिमानों की दृष्टि से यह गीत वास्तव में सशक्त है। संभवतः 1914 के काल में भगवान की सता को ऐसी चुनौती किसी कवि

दलित साहित्य के प्रवक्ता और विचारक हिन्दी काव्य में प्रथम दलित चेतना की जब बात करते है, तो वे हीरा डोम से पहले की कई दलित प्रतिभाओं को भुलाने का प्रयास करते हैं । उन तक वे पहुँचना नहीं चाहते । इनमें जिस एक महामनीषी ने संपूर्ण उत्तर प्रदेश में दलित चेतना का विकास किया, वह स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' है तथा जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में तथा बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में आदि हिन्दू आंदोलन चलाया था और कविता, गीत, भाषण और पत्रकारिता के माध्यम से दलित स्वाभिमान और दलित मुक्ति के सवाल उठाये थे । स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' के योगदान को भुलाकर हम हिन्दी दलित साहित्य के इतिहास की परिकल्पना को मूर्त-रूप नहीं दे सकते । वह हिन्दी क्षेत्र में सिर्फ दलित आंदोलन और दलित पत्रकारिता के ही जनक नहीं थे, अपितु पंद्रहवीं शती की दलित चेतना की काव्यधारा को भी हम उनके द्वारा विकसित करते हुए देखते हैं । यदि मध्यकालीन निर्गुणवादी संतों की दलित चेतना हिन्दी दलित कविता का आदिकाल है, तो उसके दूसरे काल का चरण स्वामी अछूतानंद की दलित चेतना से ही आरंभ होता है ।

दलित चेतना के वरिष्ठ हिन्दी कवि और प्रसिद्ध साहित्यकार इलाहाबाद निवासी श्री गुरूप्रसाद मदन ने यह खोज़ निकाला है कि - "स्वामी अछूतानंद की कविताएँ हीरा डोम की कविता से भी पहले छप चुकी थी । यदि हीरा डोम की कविता 'सरस्वती' 1914 में छपी थी, तो श्री मदनजी के पास सन् 1912 में छपी स्वामीजी की कविताएँ मौजूद है । उन्हें स्वामीजी की किसी कविता पुस्तक के दो पृष्ठ खस्ता स्थिति में प्राप्त हुए है, जिन्हें उन्होंने प्लास्टिक कवर में ढककर सुरक्षित करके रखे हैं । ये कविताएँ लोक शैली में लिखी गयी है, जो भजन, गज़ल, दादरा, हरिगीतिका आदि रूप में है ।"[34]

काल की दृष्टि से चूंकि ये कविताएँ सन् 1912 में प्रकाशित हो चुकी थी और इनका प्रामाणिक प्रति श्री गुरूप्रसाद मदन के पास सुरक्षित है, इसलिए हम दलित चेतना का प्रथम उच्छवास स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' की रचनाओं में मानने के लिए बाध्य है । भाषा की दृष्टि से भी स्वामी अछूतानंद ही दलित चेतना के प्रथम कवि माने जायेंगे, क्योंकि हीरा डोम की कविता भोजपुरी में है । यहाँ तक चिंतन का प्रश्न है, हीरा डोम की कविता का भाव पक्ष सम्वेदना पूर्ण और धार्मिक हैं, जबकि स्वामी अछूतानंद 'हरिहर'

की कविताएँ गंभीर इतिहास बोध से भरी हुई है और विचारोंत्तेजक है । हीरा डोम यदि दलित की दासता का बोध कराते है तो स्वामीजी दासता से मुक्ति का आह्वान कराते है । हीरा डोम की कविता में क्रांति चेतना नहीं है, परंतु स्वामी जी की कविताएँ उनके दलित आंदोलन का हिस्सा है । उनमें चिंतन का विकास है । वे दलितों के संघर्ष के लिए उत्तेजित करती है ।

यह भी विचारणीय है कि हीरा डोम भगवान को भी चुनौती देते है, जबकि अछूतानंद जी ईश्वरवादी हैं और दलितों की मुक्ति के लिए ईश्वर से अपील भी करते है । निस्संदेह यह उस दलित चेतना का प्रभाव ही है, जिसे कबीर, रैदास आदि दलित संतों ने स्थापित किया था । उपरोक्त के सिवा अछूतानंद की अन्य काव्य रचनाएँ भी उपलब्ध है । आदि हिन्दू आल्हा, मायानंद, बदिदान, आदिवंश का डंका इत्यादि उनकी काव्य रचनाएँ आज भी दलित वर्ग में पढ़ी जाती हैं । हीरा डोम की कविता भी लोकगीत शैली की है । ध्यान रहे कि लोक और दलित साहित्य में संगीत और कविता दो भिन्न चीजें नहीं है । स्वामी जी की अन्य काव्य रचनाएँ भी इतिहास बोध और गंभीर चिंतन की अभिव्यक्तियाँ है, जबकि हीरा डोम की एकमात्र उपलब्ध रचना 'अछूत की शिकायत' लोक शैली की रचना होकर भी एक सशक्त दलित कविता के सभी गुणों से भरी है । निसंदेह दलित चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति के लिए स्वामी अछूतानंद या हीरा डोम में से किसी एक को प्रथम कवि का स्थान नहीं दिया जा सकता किंतु काल की दृष्टि से हीरा डोम का स्थान स्वामी जी के परवर्ती ठहरता है ।[35]

हिन्दी में दलित-साहित्य :

मराठी में दलित साहित्य की संकल्पना मराठी साहित्य के लिए एक नयी उपलब्धि है, जिसमें दलितों की वेदना, पीड़ा बोल उठी है और दलित शक्ति अपने अस्तित्व तथा उद्धरार्थ क्रांति-पंथ चुनती है । परंतु हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य ऐसा कोई अलग साहित्य प्रकार नहीं है, दलित आंदोलन ऐसा कोई नया आंदोलन नहीं हैं परंतु उसमें दलित-विवेचना अवश्य हुआ है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक निर्मित साहित्य में दलितों से संबंधित चित्रण उनकी हालत पीड़ा आकांक्षा आदि की अवतारणा दलित आंदोलन के रूप में नहीं है । आदिकालीन कुछ सिद्ध और भक्तिकालीन रैदास तथा कृष्णदास दलित थे । परंतु उनके साहित्य पर आंदोलनकारी दलित-साहित्य का आरोप करना उनके प्रति अन्याय होगा, क्योंकि उनका

दृष्टिकोण दलित-साहित्य निर्माण का नहीं था । दलितैतर साहित्यकारों के द्वारा भी हिन्दी में यंत्र-तंत्र फुटकल रूप में दलित चित्रण हुआ है । इस रूप में हिन्दी में दलितों से संबंधित साहित्य को दलित साहित्य कहा जा सकता है, जिसका विवेचन यहाँ कालानुक्रम से दिया जा रहा है ।[36]

हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल को 'आदिकाल' या 'वीरगाथा काल' नाम से पहचाना जाता है, क्योंकि उस काल के साहित्य में वीर रस की प्रचुरता थी । आदिकालीन 'सिद्ध साहित्य' अपने युगीन वैषम्य के प्रति विद्रोही धारा व्यक्त करता है, जिसमें दलितों को समता, प्रतिष्ठा और न्याय प्रदान करने का दृष्टिकोण है ।

स्थूल तौर पर इस आदिकाल में समाजगठन में अनेक नयी जातियों का निर्माण हुआ था । ब्राह्मणों द्वारा तिरस्कृत इन जातियों का आर्थिक स्तर सुधरता गया । समाज में इन नव निर्मित जातियों का विद्रोह केवल आर्थिक कारण से नहीं था । ये जातियाँ स्वतः अपने को ब्राह्मण कहने लगी थी । डोम और चमार भी अक्सर अपने पूर्वजों के ब्राह्मण होने का दावा करते थे ।

हिन्दी साहित्य में आदिकाल, अपभ्रंश काल या वीरगाथा काल के अंतर भक्ति-काल या भक्ति युग अपना विशिष्ट महत्व रखता है । निर्गुणवादी और सगुणवादी कवियों ने भक्ति आंदोलन के द्वारा भक्ति के क्षेत्र में सभी जातियों को समान अधिकार प्रदान करने का महान कार्य किया था । हिन्दू धर्म से प्रभावित सनातनी परंपराओं, रूढ़ियों आदि के विरोध में जाकर उन्होंने जुल्मी धार्मिक और सामाजिक विचारों की हेयता दिखायी थी । हिन्दू धर्म में वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था को जो प्रमाणभूत माना है उसकी जड़ को तोड़ने का प्रयत्न भक्ति आंदोलन की निर्गुणवादी शाखा ने किया ।

सामाजिक दृष्टि से जनता, अन्याय, शोषण, दरिद्रता से पीड़ित थी । दलित जातियाँ उच्च वर्णो के प्रभाव से दबी हुई थी । उनका जीवन उपेक्षित और बहिष्कृत था । भक्ति के द्वारा इस हालत से उनके उद्धार का संदेश भक्त कवियों की वाणी की विशेषता थी । ईश्वर की विशाल दृष्टि में न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा, न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है । ईश्वर हर पददलित का उद्धारक है वह सबका है और सब उसके है ।

मिथ्या आडंबर, रूढ़िवाद के विरोधी और जाँति-पाँति को न माननेवाले निर्गुणवादी संत कवियों में कबीर का स्थान सबसे ऊँचा था । उनकी जाति जुलाहे की थी । उन्हें नीच जाति का साधक समझ कर लोग

उनकी हँसी उड़ाते थे परंतु उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में जाँति-पाँति को व्यर्थ समझा था । कबीर ने स्वयं जाति विषयक अपने विचार बताए है -

"जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान ।
मोल करी तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ।।"

भावार्थ :

जन्म से साधु किस जाति का है यह नहीं पूछना चाहिए । उसके ज्ञान के अनुसार उनकी जाति तय होनी चाहिए । म्यान की अपेक्षा उसमें होनेवाली तलवार का महत्व अधिक है, इसलिए उसका मूल्य जानना चाहिए । इस तरह जाति बाह्य कवच म्यान जैसी निस्सार है । यहाँ कबीर ने किसी जाति विशेष को प्राधान्य नहीं दिया है ।[37]

संत रैदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि जाति से चमार थे । "इन्होंने अपनी बानियों में स्थान-स्थान पर प्रसंगानुसार अपनी जाति का उल्लेख कर दिया है जिसके आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनका जन्म चमार कुल में हुआ था । इनके अनेक पदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये चमार जाति के थे - 'ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार' - इन्होंने अपने को खलास चमार कह रैदास खलास चमारा, जो हम सहरी सो मीत हमारा' - भी बतलाया है, जिससे इनके चमार जाति का होने में कुछ संदेह नहीं रह जाता ।"[38]

सगुणवादी रामभक्त कवि तुलसी का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था । फिर भी उन्होंने अपने संबंध में जाति-पाँति का गर्व कभी नहीं किया था -

"धूत कहों, अवधूत कहों, रजपूत कहों, जोलहा कहों कोआ
काहू की बेटी सौ बेटा न ब्याहव, काहू की जाति बिगार न सोऊ ।"

उन्होंने कबीर की भाँति वर्णाश्रम व्यवस्था और बाह्याड़म्बर की आलोचना नहीं की थी । परंपराओं की हँसी नहीं उड़ाई थी । इससे तुलसी परंपरावादी थे ऐसा भ्रम मन में उत्पन्न हो सकता है । परंतु वे परंपरावादी न होकर मर्यादावादी थे । उन्होंने सुव्यवस्थित समाज व्यवस्था के लिए अंकुश रूप वर्ण-भेद और वेदों का समर्थन किया था ।

अरण्यकांड में तुलसी के द्वारा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता प्रमाणित करने का प्रयास किया है ।

सगुण राम भक्ति शाखा के कवि नाभादास ने 'भक्तमाल' नामक का जो ग्रंथ लिखा है, उसमें उन्होंने साम्प्रदायिक भेदभाव को त्याग दिया है, सभी भक्तों का वर्णन किया है ।

कृष्ण भक्ति शाखांतार्गत कवियों ने कबीर की भाँति वर्ण-व्यवस्था, शोषण आदि का खंडन-मंडन करने में अपनी शक्ति खर्च नहीं की थी । उन्होंने खुले तौर पर दलितों की ओर से अपनी कोई आग्रही धारणा पेश नहीं की थी ।

"कृष्ण भक्त कवि सूरदास की जाति के संदर्भ में बहुत कुछ वादविवाद हुआ था । अधिकांश विद्वान उन्हें ब्राह्मण सिद्ध किया जा सके, इस विषय में चिंतित रहे । उन्होंने स्वयं अपनी जाति-पाँति के बारे में उदासीनता व्यक्त की थी । उन्होंने यत्र-तत्र अपने को अत्यंत पतिता समझा है और अपने उद्धार की इच्छा व्यक्त की है - "प्रभु मेरे मो सौं पतित उधारौं ।" उन्होंने अपने संपूर्ण काव्य में कही भी ब्रह्म की स्तुति-प्रशंसा नहीं की, वरन् 'श्रीधर के विप्रत्य का तनिक भी आदर नहीं किया और उसे कम से कम पाँच बार 'बामन' कह कर उसके प्रति निरादर की भावना प्रकट की है । इस प्रकार 'मटराने के पांडे' का चौका कृष्ण के द्वारा बार छुआ के उन्होंने भक्ति पंथ में छूआछूत के विचार को व्यर्थता के साथ विप्रत्व के प्रति विरोध नहीं तो घोर उदासीनता की व्यंजना अवश्य की है ।"[39]

भक्तिपंथ में जांति-पांति को स्थान न देने के आशय का सूरदास का यह पद दृष्टव्य है -

"कहौं सुक श्री भागवत - विचार
जाँति-पाँति कोऊ पूछता नाहीं, श्रीपति के दरबार ।"

कृष्ण भक्ति शाखा के अन्य कवि कृष्णदास शूद्र जाति के थे और महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य और कुपात्र होने के कारण उन्हें मंदिर का मुखियाँ बनाया गया था । महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जाँति-भेद न देखकर इस तरह एक दलितों को ऊपर उठाया था, सम्मानित किया था ।

मीरा ने तो दलित चमार रैदास को अपना गुरु होना बताया है -

"गुरु रैदास मिलै मोहि पूरे ।
धुर से कलम मिडी ।"

इससे स्पष्ट है कि मीरा ने भक्ति-काल ज्ञान के लिए छूत-अछूत भेद को स्थान नहीं दिया था ।

रीतिकाल में "समाज के धार्मिक नेता ब्राह्मण वर्ग अनेक प्रकार के तर्क कुतर्को में पड़कर लोक समाज को भ्रम में डाले हुए थे । अतः कवि केशव साधना का ऐसा मार्ग चाहते थे, जिसमें अशिक्षित जनता को उन ब्राह्मणों की कृपा पर निर्भर न रहना पड़े । "भूषण और लाल" कवियों के समय में जातियता का भाव पनप रहा था । इस हालत में सामाजिक प्रश्नों की और उनका ध्यान नहीं था ।"[40]

हिन्दी साहित्य के आधुनिक कालीन साहित्यांतर्गत कुछ उपन्यासों, कहानियाँ, नाटकों, एकांकियों, काव्य-कृतियाँ, निबंधों और रेखाचित्रों में उनके विवेच्य विषयों में दलित जीवन को स्थान मिला है ।

उपन्यास :

प्रेमचंद गांधीयुग के कलात्मकार होने से दलितोद्धार, दलितों का पतित जीवन, ऊँचे, वर्ण के द्वारा दलितों का शोषण उनके चिंतन का विषय बना रहा और परिणामतः दलित जीवन से संबंधित उनके कथा साहित्य की सृष्टि हो गई है । उनके उपन्यासों से रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि और गोदान उपन्यास उपेक्षित दलित जीवन के चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

सियारामशरण गुप्त : के 'अंतिम आकांक्षा' उपन्यास में गाँव की पाठशाला के अध्यापक सामाजिक पाखण्ड और वर्ण भेद के खिलाफ है ।

वृंदावनलाल वर्मा : के उत्तर-वैदिक कालीन एतिहासिक उपन्यास 'भवनविक्रमम' में एक शूद्र आखिर योग साधना से ऋषि का पद प्राप्त करता है कविंजल शूद्र होने पर भी तप से ऋषि हो जाता है ।

निराला : की 'कुंल्ली भाट' नामक चारित्तोपन्यास रचना दलितोद्धार समस्या को सामने रखती है ।

नागार्जुन : 'दुःखमोचन' उपन्यास में दुःखमोचन को एक ग्राम सेवक के रूप में दिखाया है ।

रांगेय राघव : के 'कब तक पुकारु' उपन्यास में चमारों पर होनेवाले अत्याचार और उनकी दुर्दशा देखने के लिए मिलती है । 'सीधा सादा रस्ता' उपन्यास में गोबरधन चित प्रसाद दलितोद्धारक के रूप में सामने आते है । 'परिती परिकथा' उपन्यास की मलारी एक चमारीन है ।

फणीश्वरनाथ रेणु : के उपन्यास में वैज्ञानिक विकास योजनाओं के प्रति ग्रामीणों की अनभिज्ञता चित्रित हुई है । जिसके लिए पुराने काल-पुरजे ही जिम्मेदार है । **अमृतलाल नागर** के 'नाच्यो बहुत गोपाल' उपन्यास

जगदीशचंद्र माथुर के द्वारा रचित 'धरती धन न अपना' उपन्यास लेखक के प्रत्यक्ष अनुभवों की उपज है, जिसमें उपेक्षित दलितों के जीवन का चित्रण समाया है ।

कहानी :

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाँति कहानियों में भी दलितों की द्ररिद्रताजन्य महान वेदना के अजस्त्र स्रोत फूट पड़े है । सामाजिक जीवन में बहिष्कृत और रुढ़ियों के कायल दलितों के कारुणिक चित्र उनकी कहानियों की विशेषता समझी जाती है । 'ठाकुर का कुँआ', 'घासवाली', 'दूध का दाम', 'कफन', 'मंदिर', 'आँसूओं की होली', 'मूठ' आदि कहानियाँ दलित वेदना से आधारित है । उनकी 'लांछन', 'मन्नू', 'मेहतर', 'गरीबी की हाय', 'वौडम' कहानियाँ में भी दलित दशा की नाम मात्र झांकी दृष्टिगत होती है ।

पांडेय बेचनशर्मा 'उग्र' को हिन्दी साहित्य का युग प्रवर्तक कहानीकार समझा जाता है । 'समाज के चरण' कहानी में दलित के मंदिर प्रवेश की घटना को उपस्थित किया है । कहानी में मंदिर प्रवेश से वर्जित एक अछूत के धार्मिक और भक्तिपूर्ण जीवन का चित्रण किया है ।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की 'चतुरी चमार' कहानी कहानीकार का मानवीय दृष्टिकोण व्यक्त करती है ।

राहुल सांकृत्यायन की 'पुजारी' कहानी का पात्र पुजारी सुधारवादी है । इसलिए उन्होंने जातिभेद को दूर रखकर चिनगी चमार को अपना हलवाह बनाया है । उनकी दूसरी कहानी 'सतल के बच्चे' में चमारों के घरों की कुल संख्या की गिनती हुई है, जिसमें तुलनात्मक दृष्टि से ब्राह्मणों के घर अधिक है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क की 'पिंजरा' कहानी में दलित समस्या की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है ।

निबंध :

हिन्दी निबंध साहित्य में **'निराला'** के कुछ निबंधों में दलित विषयक विचारों की व्यंजना हुई है । जिसमें 'चरखा', 'अधिकार समस्या', 'वर्तमान हिन्दू समाज' का समावेश है ।

राहुल सांकृत्यायन के 'हरिजन' निबंध में दलितों की देन्यावस्था और अधिकारहीनता का विवेचन किया है ।

रेखाचित्र :

महादेवी वर्मा ने अपने रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र' में स्पृश्य व्यक्तियों की भाँति अस्पृश्य या दलित व्यक्ति को भी स्थान दिया है । इसमें लेखिका ने सनातनी आर्यत्व की दलितों के प्रति होनेवाली संकुचित कृति का उपहास किया है ।

नाटक :

इस नाटक का क्षेत्र भी दलित विवेचना से अछूता नहीं है । **जयशंकर प्रसाद** के 'चंद्रगुप्त' नाटकमें नंद की वर्ण संकरता का उल्लेख किया है । 'जनमेजय का नागयज्ञ' में नागजाति का विवेचन किया गया है । **प्रेमचंद** के 'प्रेम की बेटी' नाटक में शूद्र-ब्राह्मण भेद के सहारे ब्राह्मणों के लिए यज्ञोपवीत की अनिवार्यता दिखाई है । **बदरीनाथ भट्ट** के 'चेन चरित्र' नामक नाटक में शूद्रों को सम्मानित पद पर स्थापित किया है । **'हरिकृष्ण प्रेमी'** के 'शपथ' नाटक के आठवें दृश्य में दलित समस्या पर पात्रों में संवाद हुए है । 'नई राह' नामक नाटक में 'प्रेमीजी' ने एक स्थान पर दिखाया है सामाजिक उन्नति के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त किशोर जैसे लोग जाति-प्रथा को जरूरी समझते है । सेठ गोविंददास के 'कुलीनता' नामक नाटक में कुलीन-अकुलीन भेद नहीं मानते है । **आचार्य चतुरसेन** के 'गांधारी' नामक नाटक में जातिप्रथा की ग्राह्यता बतायी है । 'शबरी' नामक नाटक में वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में शबरी के संबंध में आए विवरण के आधार पर नाटक लिखा है । **जगदीशचंद्र माथुर** कृत 'पहला राजा' में तत्कालीन वर्ण संकरता सूचित होती है । **जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी** के 'तुलसीदास' नामक नाटक में दलित के प्रति आदर दिखाने का प्रयत्न हुआ । **विनोद रस्तोगी** के 'नए हाथ' नामक नाटक में ऊँच-नीच, जाति भेद, वर्ण भेद का खंडन क्रांतिकारी युवक महेन्द्रपाल के द्वारा किया है । **पं.रमेश चौधरी** 'आरिगपूडि' का 'कोई न पराया' नाटक जाति श्रेष्ठता की व्यर्थता पर प्रहार करता है । **श्री धनानंद** बहुगुणा के 'समाज' नाटक में दलितोद्धार की समस्या को छेड़ा है । राजा **राधिकारमण प्रसाद सिंह** कृत 'नज़र बदल बदली गए नज़ारे' नाटक में दलितोद्धार और जाति-प्रथा विनष्ट करने के प्रश्न पर मंत्री भाषण देते है । अस्पृश्य जातियाँ पुण्य-प्रसिद्ध नदियों में ऊँची जातियों के लोगों के साथ स्नान नहीं कर सकती इस प्रश्न को **'पं.श्रीकृष्ण मिश्र'** ने 'देवकन्या' नाटक में पेश किया है । इस तरह **आनंद**

प्रसाद श्रीवास्त्व का 'अछूत' नाटक दलितों की दैन्यावस्था समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है । **नरेन्द्र** लिखित 'नीच' नाटक में भी जातिप्रथा के प्रति विरोध प्रकट किया गया है ।

इस तरह उपर्युक्त चर्चा से हिन्दी के कुछ नाटकों में वर्ण-व्यवस्था, जातिप्रथा, अस्पृश्यता से संबंधित व्यक्त विचारों पर प्रकाश पड़ जाता है ।

एकांकी :

हिन्दी के कुछ एकांकियों में भी दलित समस्याओं की झाँकी मिलती है । **सेठ गोविंददास** के द्वारा लिखित 'अर्ध जाग्रत' एकांकी में काँग्रेस द्वारा ऊँच-नीच, जाँति-पाँति जैसे भेदों को दूर करने के लिए रचे स्वाँग को दिखाया है । 'जाँति-उत्थान' एकांकी में जातिगत उच्चता-नीचता, वर्ण-भेद, ब्राह्मणों का परंपरागत महत्व जैसी बातों की व्यर्थता पर दृष्टिक्षेप किया है । **हरिकृष्ण 'प्रेमी'** के 'पश्चाताप' एकांकी में भंगी के मंदिर प्रवेश और एक भंगी डॉक्टर के धर्म-परिवर्तन की बात आयी है । 'निष्ठुर न्याय' में जाँति-पाँति के व्यर्थ बंधनों पर आघात किया गया है । **उदयशंकर भट्ट** ने 'मंदिर के द्वार पर' एकांकी में ब्राह्मण श्रेष्ठत्व के कारण दलितों की जो अवहेलना होती है । उसका चित्र खींचा है । **भगवतीचरण वर्मा** के 'चौपाल में' एकांकी में आंतरज्ञातिय विवाह की घटना को बताया है । **लक्ष्मीनारायण लाल** के 'औलादी का बेटा' नामक एकांकी में यह है कि दलित तन तोड़कर अपने स्वामी की सेवा करते है । पर इसके बदले उन्हें भूखे पेट सोना और मालिक की गालियाँ खाकर अपमानित जिंदगी बितना पड़ती है ।

हिन्दी गद्य-साहित्य की तरह पद्य साहित्य में भी कुछ कवियों के द्वारा दलित समस्या से संबंधित कई चित्र चित्रित किए गए है । 'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त के दलितोद्धार और समाज-सुधार विषयक कुछ विचार समाए हुए है । उन्होंने दलितोद्धार को सिद्धांतः मान्यता देते हुए नज़र आते है । 'सांकेत' में उनकी उनके राम निषाद गृहराज को अंक में भर देते हैं और 'स्वदेशसंगीत' रचना में भी अस्पृश्यता की वैचारिक अग्राह्यता का प्रतिपादन हुआ है । 'आर्द्धा' नामक रचना में सामाजिक जीवन के मर्मस्पर्शी चित्रों के साथ-साथ कवि सियाराम गुप्त ने समाज की अनेक कुरीतियों पर अपनी निगाह डाली है । इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र लिखते है - 'एक फूल की चाह' एक अछूत बालिका की कहानी है । सियाराम गुप्त की 'अनाथ' नामक रचना में जो कि काल्पनिक सामाजिक खंड काव्य है । दलितों पर होनेवाले अन्याय

को प्रदर्शित किया है । सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का व्यक्तित्व विद्रोहजनित है । व्यर्थ परंपरा, बाह्याड़म्बर, ऊँच-नीच, जाति-भेद जैसी बातों की उन्होंने आलोचना की है जिसमें क्रांति का नाद सुनाई पड़ता है उनकी 'अनामिका', 'दान' कविता में धर्म का मर्म न जाननेवाले भक्तों पर व्यंग्य कस लिया गया है, उनकी निर्ममता को दिखाया है । सुमित्रानंदन पंत की 'ग्राम्या' नामक रचना में परंपरागत रूढ़ियों, जातीय भिन्नता, अशिक्षा और शोषण का ग्रामजीवन पर होनेवाले प्रभाव प्रतिबिम्बित हुआ है । 'चमारो के नाँच' कविता चमारों के द्वार रचे युद्ध के बेढ़ंगे स्वांग में उनके मुक्त नाच के साथ उनकी असमी प्रसन्नता की झलक दिग्दर्शित करती है । रामकुमार वर्मा के द्वारा रचित 'एकलव्य' रचना में प्रताड़ित शूद्र जीवन की कथा आयी है, जो तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक न्याय और अन्याय के चित्र सामने रखती है । उदयशंकर भट्ट कृत 'कौन्तेय-कथा' रचना में कवि शिव के द्वारा अर्जुन को किए उपदेश के रूप में ऊँच-नीच भेद न मानकर सभी के उन्नति का मार्ग बताते है । रामधारीसिंह दिनकर कृत 'रेणुका' रचना की 'बोधिसत्व' कविता दतिलोद्धार आंदोलन को बल प्रदान करने के लिए लिखी जा चुकी है । 'कुरुक्षेत्र' में 'स्नेह संचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण' इस तरह कवि दिनकर ने जो कहा है वह दलितोत्थान में सहायक ही है । 'रश्मिरथी' रचना में कवि दिनकर ने शूद्रत्व के कारण कर्ण के बने अवहेलनापूर्ण जीवन का चित्र रेखांकित किया है । जगदीशचंद्र गुप्त का लघुकाव्य या खण्ड काव्य 'शम्बूक' में वर्ण-व्यवस्था, जातिभेद और पक्षपाती व्यवहार के प्रतिरोध में शूद्र-शम्बूक का विद्रोही स्वर गूंजित हुआ है ।

हिन्दी में दलित साहित्य का सही विकास तब तक संभव नहीं होगा जब तक दलित समाज से लेखक मूल हिन्दी में अपनी व्यथा नहीं कहेगें । यह प्रश्न दलितों में शिक्षा के प्रचार से जुड़ा हुआ है । दलितों की इस प्रकार की दशा को प्रकाश में लाने के लिए मराठी दलित साहित्य की भाँति हिन्दी में दलित साहित्य की सृष्टि लाभकारी होगी ।

उत्तर भारत में दलित साहित्य :

अब हम भारत का शीश अर्थात् उत्तर भारत में व्याप्त दलित साहित्य का परिचय प्राप्त करेगें । दो दशक पूर्व तक उत्तर भारत में दलित साहित्य में जो शून्य था, इन साहित्यकारों ने उस शून्य में काफी कुछ भरा है । किंतु मराठी में उपलब्ध साहित्य में केवल चार पाँच उपन्यास लगभग इतने ही

कहानीसंग्रह, इनसे कुछ अधिक नाटक है और एकांकी तथा दो-तीन आत्मकथाएँ भी ऐसी रचनाएँ है जिनकों सही माईने में दलित साहित्य माना जाता है । कविता की स्थिति जरूर बेहतर है, इसके अलावा जो कुछ दिखाई देता है उसमें छुट-पुट कहानियाँ, कविताएँ या विचार लेख है । राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में आज भी सामंती व्यवस्था कायम है । इन प्रदेशों के अधिकांश गाँव आज भी तथाकथित जमींदार अथवा उच्च मध्यम वर्गीय सवर्णो के शिकंजे में है जो मनमाने ढंग से दलितों का शोषण करते है । ऐसी स्थिति के रहते उत्तर भारत में दलित लोक साहित्य में भी उभरकर सामने नहीं आ सकता । इसलिए प्रचुर मात्रा में दलित साहित्य दिखलाई नहीं पड़ रहा है । प्रकाशन एवं आर्थिक साधन बहुत सीमित है फिर भी आशा की जानी चाहिए कि शीघ्र ही उत्तर भारत में दलित साहित्य की एक पहचान बनेगी ।

पंजाबी के वरिष्ठ दलित कथाकार प्रेम गोरखी के शब्दों में हम दलित तेवर का अंदाजा लगा सकते है - "वह सदियों पहले वाला स्वाभिमान रहित, विचारहीन और अस्तित्वहीन नहीं रहा । वह निर्णय ले़ने की स्थिति तक पहुँच चुका है कि उसे बेहतरी के लिए क्या करना है और अब उसे क्या पढ़ना और क्या लिखना है ।"[41]

दलित समस्याओं को लेकर गैर दलित साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य को अगर दलित साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है तो पंजाबी भाषा में यह काम बहुत समय से आदर्शवादी, गांधीवादी, नक्सलवादी और मार्क्सवादी साहित्यकार निरंतर करते आ रहे हैं, जिनमें नानकसिंह और संतोष सिंह धीर जैसे मूर्धन्य लेखक अग्रिम पंक्ति में रखे जा सकते है । इन लेखकों ने साहित्य की विभिन्न विद्याओं कहानी, उपन्यास तथा अपनी काव्य रचनाओं में गाँवों के गरीबों, किसान और दलितों के नारकीय जीवन क़ो चित्रित करने का प्रयास किया है । नानकसिंह की छोटी सी कहानी 'कल्मों' दलितों की स्थिति का एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करती है । पर दृष्टि गैर दलित की ही रहती है । यह कहानी अछूत समस्या को समाज के सामने लाकर नंगा कर देती है । लेकिन अगर हम दलितों द्वारा प्रस्तुत साहित्य को ही दलित साहित्य की श्रेणी में रखते हैं तो पाते है कि अधिक प्राचीन साहित्य खोजा नहीं गया है और वर्तमान पंजाबी भाषा में रचित दलित साहित्य अपने शैशवकाल में है । अब हिन्दी की प्रेरणा से बढ़ रहा है, इसीलिए हिन्दी

दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' की डॉ. श्यौराजा सिंह बैचेन की कहानी 'अस्थियों के अक्षर' का पंजाबी में अनुवाद किया है ।[42]

जहाँ तक पंजाबी दलित साहित्य आंदोलन का प्रश्न है तो वह यह डॉ. अम्बेड़कर का समकालीन ही माना जाना चाहिए । लेकिन शिक्षा से सदियों से वंचित रखा गया । दलित अपनी भावनाओं को कागज़ों पर उतारने की प्रक्रिया में भी पीछे ही रहा, अर्थात् साहित्य की द्विज वर्ग ही बना रहा । अपनी वेदनाओं को प्रकट करने की कला प्राप्त करने में भी बहुत समय लगा ।[43]

पंजाबी भाषा में प्रस्फुटित प्रथम दलित साहित्य सम्मेलन विधिवत् रूप में सन् 1994 में आकर हो पाया जो पंजाब के प्रसिद्ध फागवाड़ा नगर में आयोजित किया गया । इसमें दलित साहित्यकारों और गैर-दलित साहित्यकारों की उपस्थिति बहुत उत्साह वर्धक रही थी । इनमें पंजाब के वरिष्ठ साहित्यकारों के अतिरिक्त दिल्ली से दलित साहित्य में रूचि रखनेवाले हिन्दी और पंजाबी के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. महीपसिंह भी शामिल थे । पंजाबी के चर्चित दलित साहित्यकार डॉ. गुरमीत कलर माज़री द्वारा पंजाबी दलित साहित्य पर एक लेख प्रस्तुत किया गया । इस सम्मेलन में अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. महीप सिंह ने कहा कि - "यदि प्रगतिशीलों द्वारा रचित साहित्य को प्रगतिशील साहित्य मानने में कोई बाधा नहीं है तो दलितों द्वारा रचित साहित्य को दलित साहित्य मानने में आनाकानी क्यों ?" इस सम्मेलन में एक तथ्य उभर कर सामने आया कि पंजाबी भाषा में दलित साहित्यकारों की एक बहुत बड़ी जमात उभर कर सामने आनेवाली है, जिन के सीने में एक दहक्ता हुआ लावा बाहर आने को आतुर है । जहर में बुझे तीरों की वर्षा अपनी कमानों पर कसी हुई नज़र आ रही है । अभी पंजाबी लेखन में दलित साहित्य कविता और कहानियाँ द्वारा प्रस्फुटित हो रहा है । अभी तक दलितों द्वारा रचित कोई ऐसा उपन्यास पाठकों के समक्ष नहीं आया जो दलित साहित्य में चर्चा का विषय बना हो ।

कथासाहित्य :

मनमोहन बाबा की नवलिका 'आजात सुंदरी' दलित नवलिका का स्रोत है । डॉ. सतिन्द्र सिंह नूर ने 'दलित टेकस्ट की बात' कहानी संग्रह प्रकाशित किया । संतोखसिंह गुरु दयालसिंह ने स्थिति और संघर्ष का वर्णन किया है । नयी पीढ़ी में प्रेम गोरखी, अतरजित, कृपाल, भूरासिंह क्लेर, मुखतियारससिंह, लालसिंह ने दलित वर्ग का निरुपण किया है । 'माटी रंग्या लोक', 'टूटेपत्ते' में दलित उत्पीड़न का सामाजिक यथार्थ निरूपित हुआ है ।

उपन्यास :

उपन्यास साहित्य में नानकसींग, जसवंतसीग, केनवाल, करतारसींग, नारूला, उपन्यासकार नामांकित है । गुरुदयालसिंह का उपन्यास 'मढीकदीवा', 'जंगेरूर', 'अणछोअें', परसा, भोरहन जीवन वेखे, आथण उगण, मोंहीन, मशालची, निंदरगील द्वारा दास्ता दलितों दी । जसवंतसिंह विरदी रचित 'निश्चल नाही चीत', श्रमिक वर्ग का उपन्यास है । टूटनवाला खूद, जुगबदल गया, सोहनसींग शीतल ने दलित पात्रों की संवेदनशील की चरमसीमा देखने को मिलती है । जसवंत बीरडी 'निश्चल, नाही चीत', 'ना छत्तर की', 'बाकीया सच', 'पंजाबी दलित चेतना प्रदर्शित' होती है ।

नाटक :

नाटक, नाट्यकारों में चरणदास सिद्ध का नाम, विशेष उल्लेखनीय है। 'अम्बियों की तरसेंगी' बाबा तन्त् इन्दुमती सत्यदेव अमानत की लाठी उल्लेखनीय है । गुरुदयाल सिंह का 'फूल' नाटक में समाज के कुरिवाज ऊँच-नीच, जातिभेद एवं अस्पृश्यता का चित्रण किया है । परबों से पहलें 'कम्ब दे धौलर' रत्थअंगनीदा और 'जिण सच्च चलैहोअे' मुख्य नाटक है । बलवंत गार्गी का 'लोहाकट्ट केसरो, कनक दी बलली में दलित उत्पीड़न अंकित हुआ है । सतीन्द्र, नंदा, गुरुशरणसिंह, केवल धालीवाला, सरदारजित बाबा सुमन लता, एस.एल.विरदी आदि नाटककार है जो दलित चेतना को उजागर करते है ।

निबंध-विवेचना :

निबंध-विवेचन दलित संवेदना को लेकर लिखे गए निबंध एवं निबंधकारों में डॉ. सेवासिंह, डॉ. चमनलाल बलवीर परवाना का नाम आदर के साथ लिया जाता है । पंजाबी दलित विवेचना साहित्य में डॉ. गुरुवचन का नाम प्रथम पंक्ति में है । उन्होंने विवेचकों द्वारा दलित लेखन की उपेक्षा का उल्लेख किया है । एस. एफ. विरदी ने 'दलित इन्कलाब' में दलितों का पिछड़ापन 'विरदी' ने लिखित 'सिखधर्म और दलित लोक' में ब्राह्मणवाद की लहर का विरोध करके सिख लहर बताया है क्योंकि उनका मूलाधार दलित है ।

आत्मकथा :

आत्मकथा की विधा के रूप में दलित साहित्यकार प्रेम गोरखी की मार्मिक आत्मकथा 'गैर हाजिर आदमी' 1994 में प्रकाशित एक सशक्त रचना हैं । जिसमें पीड़ा और यातना है दलित जीवन का कुदरती न्याय के ध्येय को

प्रदर्शीत किया है । जिसमें कलात्मक और नाटकीय शैली है । प्रेमगोरखी एक उभरते हुए हस्ताक्षर हैं । यह आत्मकथा मराठी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.शरण कुमार लिंवाले की आत्मकथा 'कक्करमाशी' से किसी भी स्तर से उन्नीस नहीं है । इसमें एक दलित साहित्यकार की संज्ञा पाने के लिए किन-किन भयावह गलियों से गुजरना पड़ता है । इसका सजीव वर्णन है जो पाठक का ध्यान खींच लेता है । एक दलित व्यक्ति के साथ चिपका हुआ जाति भेद का अहसास, कैसे उनका पीछा करता है, यह भयानक अहसास पाठक के समक्ष बहुत से ज्वलंत प्रश्न छोड़ता है ।

कविता :

पंजाबी दलित साहित्य में जो विधा सबसे सशक्त रूप में उभरी है वह काव्य विद्या है । दलित चेतना और वेदना के स्वर जितने कविता में मुखर होकर उभरें है उतने किसी अन्य विधा में नहीं । पंजाबी की दलित कविता का यौवन काल समझा जा सकता है । दलित कविता में सबसे प्रखर स्वर दलित कवि 'गुरुदास राम' को माना जा सकता है । जिन्होंने अंधविश्वास, रूढ़ी, जातिव्यवस्था को तोड़ने के लिए जमाम को ललकारा है । संत उदासी, कवि लालसिंह का काव्यसंग्रह 'नागरलोक' है । कवि चरणलाला, मोहनसिंह लोहिया, बलवीर माधापुरी, कमलदेव पाल, द्वारका भारती, मदनवीरा, पाश, युवाकवि सुरिन्दर जाली, नरिन्दर बेदी, जगदीश कल्लर, सरुप स्वालवी, ईकबाल घास, कुलवीर प्रकाश, होंशियार पुरी आदि है ।

पत्र-पत्रिका :

पंजाबी दलित साहित्य में 'नवा जमाना' पंजाबी ट्रयुबुन लकीर शब्द सिरजना, चिराग आदि का नाम उल्लेखनीय है ।

प्रकाशन के क्षेत्र में पंजाब के बुद्धिजीवियों की एक संस्था 'मानववादी रचना मंच' ने कुछ दलित साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाशित करने का उद्यम किया है, जो एक चर्चा का विषय है । इस संस्था द्वारा गुरुदास राम आलम की कविताओं का एक संपूर्ण संग्रह और कुछ स्तरीय निबंधों का संकलन पाठकों के समक्ष उपस्थित किया गया है, जिसने साहित्यिक क्षेत्र में नई हलचल उत्पन्न कर दी है । इसमें जाति-प्रथा जैसी व्याधि पर कुछ लेखकों के मौलिक विचार समाहित है । इन लेखकों में ज्ञानसिंह बल्ल, केवल सिंह परवाना के नाम उल्लखनीय हैं ।

जिस तरह हिन्दी दलित लेखन मराठी भाषा व आंदोलन से प्रेरित तो

है, लेकिन मराठी भाषा का रूपांतरण नहीं, ठीक उसी तरह पंजाबी दलित साहित्य लेखन हिन्दी व मराठी भाषा से प्रेरणा तो अवश्य लेता है, लेकिन उसकी अपनी स्वतंत्र पहचान है । पंजाबी के उभरते हुए दलित कथाकार गुरमीत कड़ियालवी की कहानी 'निवोलिर्या' धान रोपते खेतों में उपजी है । इस मार्मिक कहानी का विषय पंजाब की दलितों के साथ धटी घटनाओं पर आधारित है । पशुओं के गोबर से सने हाथों को मेंहदीवाले हाथ समझनेवाली दलित स्त्री की मानसिकता का चित्रण पंजाबी दलित साहित्य का अपना अनूठापन है । कविताओं में द्रोणाचार्य को आज के एकलव्य द्वारा अपना अगूंठा न कटवा कर अंगूठा दिखाने की बात करना पंजाबी साहित्य की मौलिकता को दर्शाता है ।

पंजाबी भाषा का दलित साहित्यकार ईश्वरवाद को तो पूर्णतया नकारता ही है अपितु वह छदम् मार्क्सवादियों से खिन्न है । वह मार्क्सवादियों के नकाब पहने चेहरों के प्रति आशंकित है । कमलदेव पाल की कविता 'भारतीय कामरेड' इसका एक ताज़ा उदाहरण है । इसीलिए पंजाबी दलित चिंतन मार्क्सवाद की खिल्ली उड़ाता दिखाई पड़ता है । अपने साथ होता मार्क्सवादियों का छलावापूर्ण व्यवहार उसे चुभता है । एक मार्क्सवादी सबसे पहले जाट और ब्राह्मण है, बाद में कम्यूनिस्ट । उसकों चुभन है कि इन मार्क्सवादियों ने उसे सभा जलूसों की दरियां झाड़ने तक ही सीमित क्यों रखा हैं ?

मध्यभारत में दलित साहित्य :

भारत के मध्य भाग जिसे मध्य भारत कहते है । उन राज्यों में हमें सिर्फ मध्यप्रदेश राज्य की ही जानकारी प्राप्त हुई है । उत्तर प्रदेश, बिहार एवं निकटवर्ती राजस्थान राज्य की गणना हो सकती है । इन राज्यों की हिन्दी राष्ट्रभाषा मातृभाषा है । राजस्थान में राजस्थानी मातृभाषा है । उनमें दलित साहित्य का प्रभाव बहुत कम है । यहाँ हम मध्य प्रदश में दलित साहित्य का विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

मध्यप्रदेश में दलित साहित्य (मध्यप्रदेश राज्य) :

मध्यप्रदेश में 'मध्यप्रदेश दलित साहित्यकार एवं समाजसेवी डॉ. सत्यप्रेमी के द्वारा दलित साहित्य को स्थान प्राप्त हुआ है । उज्जैन की इस विभूति को मध्यप्रदेश विधानसभा ने सन् 1994 का 'अम्बेड़कर स्मृति पुस्कार' प्रदान किया वही इसी वर्ष 1996 में भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली ने भी 'डॉ. अम्बेड़कर राष्ट्रीय पुरस्कार' प्रदान किया । जिन्होंने अनेक

किताबें लिखी है 'साक्षात्कार', 'अक्षरा' आदि में लेख लिखे हैं । दलित साहित्य और सामाजिक न्याय उनकी ख्याति प्राप्त आलोचनात्मक पुस्तक है ।

मध्यप्रदेश प्रांत के ही दूसरें दलित साहित्यकार है - श्री लालचंद राही । श्री लालचंद राही की कविताएँ दलित दर्द का दस्तावेज हैं । उसमें नंगे पाँवों में चुभनेवाले शूल है तथा सवर्ण ऊनी शाल के विरोध में उभरती हुई लहसुन की चटनी की गरमाई है । उनका काव्य संकलन प्रकाशित हो चुका है । सन् 1992 में भारतीय दलित साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा 'डॉ. अम्बेड़कर नेशनल अवार्ड' से सम्मानित किया जा चुका है ।

मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी उज्जैन के अध्यक्ष के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले लेखकों में सत्तावन वर्षिय श्री अवंतिका प्रसाद मरमट का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । 'सर्प टोटमवाद' प्राचीनतम सिद्धांत के आधार को खोजकर सर्पो के बारे में विशेष जानकारी पूर्ण अध्ययन एवं संग्रहण का कार्य किया है । जिनमें भविष्योन्मुखी जनचेतना है ।

श्री सी.एस.बंजारी साहित्य मनीषी डॉ. देवेन्द्र, दीपक, डॉ. बी.एल.बम्बोरिया, गुरुकवि श्री कंवरलाल खधांत, श्री प्यारेलाल रागोठा, श्रीमती कमला वर्मा, श्रीमती प्रभा बीसे, श्रीमती रमाकुमारी पांचाल, श्री राम सहाय बरैया, श्री दयाशंकर सुबोध, डॉ. अनिल गजभीये, डॉ. उके, डॉ. संतोष चौधरी, श्री किशनलाल केम, डॉ. राम गोपाल सिंह, डॉ. बी.एल.कुमावत, कपूर वासनिक, श्री सी.पी.सेनिया, श्री जगन्नाथ खाण्डेगर, श्री सेवाराम खाण्डेकर, डॉ. हेमलता लोदवाल, डॉ. रघुनाथ प्रसाद, श्री आर. सी. विश्नार, डॉ. भगीरथ प्रसाद, श्री ओमप्रकाश मेहरा, श्री रामनारायण कुवाल, हिरालाल सोनारतिया, श्रीमति चंद्रकांता उपाध्याय, डॉ. उर्मिला शर्मा, रामरतन ज्वैल, श्री राम दबे, श्री चूड़ामणि बंजारे, श्री भरत बेचैन, श्री बहादुर मारुतकर, सु. श्री साधना लोनहारे, श्री जगदीश कुमार भैंसारे, श्री जी. डी. मेश्राम, श्री प्रमोद मेश्राम, श्री मधुकर मरमट, श्री दिलीपकुमार पाण्डे, श्री एन.एम.खोबरागडे, श्री दुर्गादास सूर्यवंशी, सांसद एवं सामाजिक न्याय अधिकारिता मंत्री (पूर्व) डॉ. सत्य नारायण जटिया, श्री जगदीश जाटीया आदि अनेक दलित साहित्यकार है । जो अपनी कलम को कुदाल बनाए हुए है और दलित समाज में जागृति, चेतना का प्रचार-प्रसार रचना द्वारा कर रहे है । मध्यप्रदेश में दलित साहित्य विभिन्न विधाओं के रूप में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है ।

पश्चिम भारत में दलित साहित्य :

पश्चिम भारत कच्छ, काठियावाड अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र की मातृभाषाओं में निहित दलित साहित्य का अवलोकन करेगें ।

मराठी दलित साहित्य (महाराष्ट्र राज्य) :

आज दलित साहित्य मराठी साहित्य का अविभाज्य अंग है । वास्तव में दलित साहित्य के कारण से मराठी साहित्य का पूरे भारत में प्रचलन हुआ है । लगभग सभी भारतीय भाषाओं में मराठी दलित रचनाओं का अनुवाद हुआ है । कुछ रचनाकारों की कृतियों का पाश्चात्य भाषा में भी भाषांतर हुआ है ।

देश की आज़ादी की लड़ाई में अस्पृश्य लोगों का बहुत बड़ा योगदान रहा है । लेकिन भारत के चरित्र में अस्पृश्यों आदिवासियों एवं पिछड़े वर्ग के लोगों के बारे में बहुत कम उल्लेख किया गया । साहित्य के इतिहास में भी दलितों के प्रति स्वर्ण विद्वानों की इसी उपेक्षित भावना को हम देखते है । आजतक भारतीय समाज में दलितों को मनुष्य का दर्जा नहीं दिया गया है । अंग्रेजो की उदार भावनाएँ और शैक्षणिक सुविधा के कारण महात्मा ज्योतिबा फूले, महर्षि वि.श.सिंदे, डॉ. बाबासाहेब अम्बेड़कर जैसे महान लोगों ने मनुष्य के अधिकार तथा हक्कों को प्राप्त करने के लिए समाज के विरोध में क्रांति करने लगे । महात्मा ज्योतिबा फूले ने दलित एवं स्त्रियों के लिए पाठशालाएँ शुरु की, विधवा विवाह के बारे में उन्होंने प्रचार किया ।

डॉ. बाबासाहब आम्बेड़कर ने दलितों के पिछड़े समाज के सवालों के मूल में जाकर जो समीक्षा की, उससे दलित मुक्ति आंदोलन को बड़ा बल प्राप्त हुआ और दलित आंदोलन बड़ा सशक्त हुआ है । डॉ. अम्बेड़कर की यह मान्यता थी कि - "सामाजिक, राजनैतिक क्रांति के लिए पहले धार्मिक क्रांति होना अनिवार्य है । सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक क्रांति के लिए धर्म की समीक्षा होना अनिवार्य है ।"[44] यही बात हमें महान ज्योतिबा फूले के साहित्य चिंतन में दिखाई देती है । फूलें ने आंदोलन की बुनियाद को ब्राह्मण धर्म की समीक्षा से ही शुरु किया है । सर्वहारा क्रांति के प्रणेता कार्ल मार्क्स ने भी सर्वहारा वर्ग के लिए 'धर्म एक अफिम है ।' महान ज्योतिबा फूले ने ब्राह्मण धर्म (हिन्दूधर्म) को सेठों और ब्राह्मणों, पंडितों, पुरोहितों का धर्म कहा है और ब्राह्मण धर्म को पूरी तरह से नकारते हुए उन्होंने सत्व और समानता पर आधारित पण्डा-पुरोहित वर्ग मुक्त, नारी और पुरूष में समानता के

सिद्धांतों पर स्थापित, सार्वजनिक, सत्य-धर्म की स्थापना की थी । फूले के सम्पूर्ण साहित्य में हिन्दू धर्म अर्थात् ब्राह्मण धर्म की गहराई में जाकर समीक्षा की है। इसीलिए डॉ. बाबा साहब अम्बेड़कर उन्हें आधुनिक भारत के क्रांति पुरुष मानते हैं । उन्होंने अपने प्रसिद्ध खोजपूर्ण ग्रंथ 'Who were the shudras' 1946 में प्रकाशित प्रथम संस्करण को महान ज्योतिबा फूले की स्मृति को समर्पित करते हुए लिखा है कि - "The greatest shudra of modern India who made the lower classes of Hindus Conscious of their slavery to the higher classes and who preached the gospel that for India Social democracy was more vital than independence from foreign rule."[45]

इस समर्पण में डॉ. अम्बेड़कर की दृष्टि में महान ज्योतिबा फूले की महानता और क्रांतिकारिता किसमें हैं । यह बात स्पष्ट हो जाती है और वे इस समर्पण में इस बात को भी स्पष्ट कर देते है कि हिन्दू धर्म अलोकतांत्रिक है, इसीलिए वे भारत को विदेशी राजतंत्र से मुक्त कराने से भी भारत में सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना को ज्यादा महत्व देते है ।

महान ज्योतिबा फूले ने भी अपनी प्रसिद्ध किताब 'गुलामगिरि' (प्रथम संस्करण-1873) में समर्पण में लिखा है कि - "युनायटेड स्टेट्स के सदाचार लोगों ने गुलामों को (काले लोग) दासता से मुक्त करने के कार्य में उदारता, निरपेक्षता और दया बुद्धि दिखाई । इसलिए उनके सम्मान में यह छोटी सी किताब उन्हें बड़े प्यार के साथ समर्पित कर रहा हूँ और मेरे देश के भाई उनके कार्य से प्रेरणा लेते हुए अपने शूद्र भाईयों को ब्राह्मण लोगों की दासता से मुक्ति करने के काम में आगे आयेगें, ऐसी उम्मीद करता हूँ ।"[46] इस समर्पण में महान ज्योतिबा फूले के सोच की दिशा क्या है यह बात स्पष्ट हो जाती है और डॉ. अम्बेड़कर भी अपने दर्शन में स्पष्ट हैं कि सवर्ण या ऊँची हिन्दू जाति ने (अगड़ी जाति के लोग) अवर्ण या शूद्र, अतिशूद्र व पिछड़ी जाति के अछूतों का शोषण, दमन, उत्पीड़न किया है । अगडी जाति के पिछडी जाति पर अपनी गुलामी को थोपा है और आर्य धर्म, वैदिक धर्म, सनातन धर्म या हिन्दू धर्म और उसका धार्मिक साहित्य, दर्शन साहित्य, नीतितत्व पौराणिक पुरुष जैसे राम, कृष्ण, परशुराम आदि सभी सवर्णवाद एवं ब्राह्मणवाद के समर्थक है । फूले और अम्बेड़कर की हिन्दू धर्म समीक्षा ही दलित मुक्ति आंदोलन की नींव है और दलित मुक्ति आंदोलन के

ऐतिहासिक महत्व को सिद्ध करती है । जो लोग दलित आंदोलन को हिन्दू सुधारवादी आंदोलन (नव जागरण) काल की उपज मानते है । उनके लिए दलित मुक्ति आंदोलन की इस बुनियाद और उसकी ऐतिहासिकता को अच्छी तरह से समझना जरूरी है ।

'शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो' यह डॉ. अम्बेड्कर का प्रसिद्ध नारा ही नहीं उनका जीवनधर्म भी है । उन्होंने मुंबई में 'पीपल्स एज्युकेशन सोसायटी' की स्थापना की और उनके द्वारा कॉलेज एवं अन्य शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना की गई । शिक्षा का प्रचार प्रसार हुआ और नई जागृति पैदा हुई । पहले जो एक विशिष्ट समूह के लिए 'दलित' शब्द का उपयोग किया जाता था । 1750 के बाद यह अस्पृश्य लोगों के साहित्य का निर्देशक शब्द बना । मराठी दलित साहित्य का उदय वास्तव में सन् 1969 को हुआ । औरंगाबाद के मिलंद महाविद्यालय में डॉ. माता वानखेड़जी ने 'अस्मिता दर्शन' पत्रिका की शुरुआत के द्वारा मराठी दलित साहित्य को एक ऐतिहासिक मोड़ दे दिया । डॉ. वानखेडे, प्राध्यापक म.भी.चिटंणीस, बाबूराव बागूले, प्रा.रा.ग.जाधव, प्रा.ल.बा. रायमाने आदि लोगों का वैचारिक मार्गदर्शन भी प्राप्त किया शि.ज.कांबले, किशन फागू, बनसोड, नारा शेडे, सुरडकर अण्णारणपिसे, शंकरराव खरात, अण्णभाऊ साठे ने कुछ रचनाओं का प्रकाशन भी किया था जो अपना अलग अस्तित्व रखती है । इनकी अपनी अलग-अलग पहचान स्पष्ट होती है । गरीबी, निरक्षरता, अंधविश्वास शोषण का चित्रण किया गया है ।

1967 के बाद दलित साहित्य का एक अनोखा एवं अलग रूप है, इसका कारण डॉ. अम्बेडकर के महान व्यक्तित्व और विचारों की गहन प्रेरणा है । सदियों से दलितों के जीवन में अंधकार छाया हुआ था । उसे रोशन करनेवाले कोई नहीं थे । इन वाणीहीन लोगों को बोलने का अवकाश प्राप्त हुआ केवल डॉ. अम्बेड्कर के साहित्य के प्रकाशन से । आज तक कुचले हुए सामाजिक समस्याओं से दबाए गए मूक मानव का आर्तनाद जिस साहित्य में प्रचंड ताकत से उभर रहा है वही दलित साहित्य है । मानवजीवन के लिए पोषक माननेवाला, न्याय की आवाज़ उठानेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है । भविष्य में निर्माण होनेवाले दलित साहित्य के बारे में नागपुर में डॉ. अम्बेड्कर ने कहा था - "उदात जीवनमूल्य और सांस्कृतिक जीवनमूल्यों को अपने साहित्यिक प्रकारों का आविष्कार कीजिए । अपनी वाणी को केवल

चार दीवारों में बंध मत कीजिए, उसकों चारों दिशाओं में फैलने दीजिए अपनी लेखनी को अपने नीज़ी प्रश्नों तक ही सीमित मत रखिए । इस देश में अपेक्षित की ओर दलितों की बहुत बड़ी दुनियाँ है इसे नहीं भूलना चाहिए। उनका दुःख उनकी व्यथा को सही भाव से समझाया करो और अपने साहित्य के माध्यम से दिखाई देती है । दलित साहित्य में - दलित नाम से पहचाने जानेवाले लोग महार, मॉगढोर, चमार, भंगी, बरूड, वहुर, आदिवासी गौंड, गोयरी, ढिवर, कोकस, बंजारी, कोल्हारी, तेली, तंबोली, धुमानकड, जनजाति पर होनेवाला अन्याय का चित्रण ही नहीं बल्कि इन जातियों को न्याय दिलानेवाला प्रयत्न करनेवाला दलित साहित्य प्रगति कर चुका है और उस शोषित जनता को अपने साहित्य में स्थान दिया है । दलित साहित्य का विरोध किसी व्यक्ति से या किसी धर्म से न होकर, सर्वगामी शोषण करनेवाली व्यवस्था से है । दलित साहित्य ने परंपरावादी, विचारप्रणाली, आत्मा, परमात्मा, नसीब, कर्म, सिद्धांत, अंधश्रद्धा, कर्मकांड, अर्थहीन धार्मिक आचरणों का हटकर विरोध किया है । भ्रमित बातों का खंडन और विज्ञान, सच्चाई, बुद्धिवाद मानवीयता का प्रतिपादन किया है । सत्य विचार, सामाजिक हित, समाजोन्मुखी भावनाओं को दलित साहित्य ने बढ़ावा दिया है । दलित साहित्य नए जीवन का प्रारंभ है । इसीलिए कहा गया है कि - "दलित साहित्य एक नहीं दुनिया का निर्माण करेगा, नयी आशा जगायेगा, दलितों एवं गरीबों में जिजीविषा को पैदा करेगा ।"

मराठी में दलित संत साहित्य :

संतो ने साहित्य द्वारा श्रेष्ठ समाज की कल्पना की है । प्राचीनकाल से मध्यकाल के उत्तरार्ध तक संत साहित्य फैला हुआ है । हिन्दी में कबीरदास, रैदास एवं मराठी में संत चोखामेला, गाडगेबाबा, नामदेव, तुकाराम, जनाबाई आदि दलित संतों ने अपनी अनुभवी वाणी से समाज के रिवाजों का, अंधविश्वासों का खण्डन किया और उनमें सुधार लाने का प्रयत्न किया, आधुनिक दलित साहित्यकारों पर इन संतो, नाथसिद्धों का भी गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है ।

कविता :

आक्रोश का प्रथम प्रारंभिक अभिव्यक्ति के लिए कविता का माध्यम आदर्श है । दो दशकों में दलित साहित्य ने कविओं की आकाशगंगा का

निर्माण किया है ? नारायण सुर्वे, दयापवार, केशवमेश्राम, नामदेव ठसाल, अर्जुन डांगले, यशवंत मनोहर, वामन निबांलकर ज्योति कांजेवार, रविचंद्र हडसनकर, एस डी. मड्राणें, भगवान मोहिर आदि कवियों की कविताओं में दलित दुनिया के दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति की गई है । 'गोलपीठ' नामदेव ढसाल का काव्यसंग्रह है । इन्होंने अपनी जिंदगी की बीती हुई समस्त घटनाओं को कविता के माध्यम से समाज के सामने रखा है और दलित जनता को जागृत करने का भरसक प्रयत्न किया है । उनकी 'सनातन अनुकंपा', 'किसी ने किसी को', 'बाप धांगड और मैं', 'जन प्रतिनिधि', 'पानी', 'भूख' आदि कविताएँ महत्वपूर्ण है । 'गाँव कुसाबहारची कविता' - वामन निम्बाळकर, 'कौड़वाड़ा' - दया पवार, 'उत्पानगुंफा' - यशंवत मनोहर, 'उत्खनन' - केशव मेश्राम, 'दसनखत' - प्रकाश जाधव, 'छावनी हल्ते ओंहे' - अर्जुन डांगले, नांके बंधी - जे. वी. पवार, 'सुरंग' - त्र्यबंक, 'सपकाले' - आडिट - प्रहलाद चेंदवानकर के काव्यसंग्रह हैं । वामन निबांळकर, केशव मेश्राम की "हमारी बस्ती में नृत्य" महत्वपूर्ण कविता है, इसमें दलित समस्याएँ तथा अपने अनुभवों को व्यक्त किया है । अर्जुन डांगले - की 'यहाँ की हर रात' ज. वि. पवार कि - 'मेरी पसलियाँ ही लेलों ।' त्र्यंबक सफाणे - की "तुम्हारे अब को ईश्वर" "तो मैं क्या करूँ" है। कवि भारत माता से प्रश्न पूछता है - माँ, तुमने मुझे प्यार दिया है क्या ? सदा हमें कर्म की दृष्टि से ही देखा गया है ।

मराठी दलित साहित्य में नारी कवियित्रिओं में 'फरियाद' - हीरा भणसोडे, 'दिशा' - ज्योति लांजेवार, श्रीमति मल्लिका अमर शेख जिन्होंने जागृति का काम किया है । 'रापी जेव्हा लखणी बनते' राम दोंताडे का पहला काव्य संग्रह है । 'ऐसा गा भी ब्रह्म' - नारायण सुर्वे का 1962 में काव्यसंग्रह प्रकाशित हुआ और इसमें प्रश्न उठा कौन यह नया दलित ब्रह्म हो सकता है ? खलबली मचा दी । सुर्वे की कविताओं का मूल स्वर कामदार मज़दूर का दुःख दर्द ही है ।

कहानी :

कविता के अलावा मराठी दलित साहित्य में कहानी ने अपना स्थान बनाए रखा है । इसमें अण्णभाऊ सांठे, श्री शंकरराव खरात, श्री बंधु माधव, श्री योगीराज वाघमारे, श्री दया पवार, श्री अर्जुन डांगळे, श्री वामन होवाल,

श्री केशव मेश्राम कहानीकार है । 'जीव्हा भी जात चोरली होती' बाबूराव बागुल का प्रसिद्ध कहानीसंग्रह है ।

उपन्यास :

मराठी दलित साहित्य में उपन्यास विधा में भी कई उपन्यास लिखें गए है । बाबूराव बागूल का - 'सूड', अप्पाभाऊ साठें का 'फकीरा' शंकरराव खरात का 'फूटपाथ', बाबूराव गायकवाड का 'झल', भीमसेन देठे का 'इस्फोट', सुधाकर गायकवाड़ का 'शूद्र', सुखराम हिरवाले का 'आभाल आणी जागरण' उत्तम कांवले का 'श्राद्ध' केशव मेश्राम का 'हकीक्त और जटायू' आदि उपन्यास प्रमुख है ।

आत्मकथा :

मराठी दलित साहित्य में आत्मकथात्मक उपन्यास की नई दिशा का प्रारंभ हुआ है । करीब 22 आत्मकथाएँ प्रकाशित हो चुकी है । धृणाएँ, भूख, प्यास आदि समस्याओं को लेकर दुःखी दलित आत्मा की पुकार के रूप में आत्मकथाएँ लिखी गई है । आत्मचरित्र का नायक ने जिस जाति में जन्म लिया है उस जाति का संपूर्ण जीवन हमें उनकी आत्मकथाओं में देखने को मिलता है । दया पवार का 'बलुत' (हिन्दी में 'अछूत') जिनकी चार आवृतियाँ हो चुकी है । श्रीलक्ष्मणमाने की 'ऊपर' जिसे साहित्य अकादमी का एवार्ड प्राप्त हो चुका है । प्रहलाद सोनकळे की आढवणीसे 'पक्षी' बहुचर्चित आत्मकथात्मक कृति है । महादेव कोंडविलकर का 'दवाचे गाठणें' (हिन्दी में 'अंत्यज') शरणकुमार निवांळकर का 'अक्करमासी' बहुचर्चित कृति है । निबांळकर की माँ अस्पृश्य और पिता लिंगायता कौन सी जाति कही जाय ? मैं नाज़ायाज औलाद हूँ ? समाज ने अभी तक उत्तर नहीं दिया है । लक्ष्मण माने की बहुचर्चित आत्मकथा 'उपर' सभी भाषाओं में, अनुदित है । नामदेव व्हटकर ने "कथा मारचा जन्माची" में ढोर जाति का सविस्तार परिचय दिया है । माधव कोंडविलकर की 'मुखामपोष्ट देवाचे गोठने' में चमार समाज का चित्रण किया है । इस तरह मराठी की हर एक आत्मकथा में कहीं न कहीं अस्पृश्यता का खुला चित्रण मिलता है ।

नाटक :

दलित साहित्य में रंगभूमि का विशिष्ट स्थान है । औरंगाबाद, पूना और नागपुर नाट्य प्रवृति के केन्द्र है । प्रेमानंद गजवी का एकांकी 'घोटभार पानी' का एक हज़ार बार प्रयोग हो चुका है । उनका दूसरा नाटक है - 'तनमजूरी' श्री दत्त भगत अच्छे नाटककार है । 'थम्बा रामराज्य एत आहे' 'कालोख्याच्या गर्भाम' 'सक्शीपुरम्' और देशाचे मारे कदी नाट्य रचनाएँ हैं ।

पत्रिका :

बिनसाहित्यिक कृतियों में दलित लेखकों ने अच्छा योगदान दिया है। 'रामपणातील' संस्कृति का संघर्ष - प्रा. अरूण कांबळे, 'अम्बेड़कर आदि मार्क्स' - राव साहब कस्बे, 'सुतावतार झालेला' गंगाधर पान्तावाणे है । विवेचन में रत्नाकर गणवीर, ताराचंद खांडेकर और 'अस्मितादर्शन' पत्रिका ने दलित चेतना को जागृत करने का अभियान जारी रखा है ।

गुजराती दलित साहित्य :

गुजराती में दलित साहित्य का आरंभ मराठी दलित साहित्य की प्रेरणा से हुआ हैं । वर्ष 1975 में दलित पेन्थर्स की 'पेन्थर' पत्रिका का गुजराती में प्रकाशन शुरू हुआ । उसमें दलित कविताएँ छपने लगी । बाद में - गरूड़, आक्रोश, तोडफोड़, अजंपो, दलित बंधु, दलितमित्र मंथन नया मार्ग, प्रगतिज्योति, समानता, सरघस, प्रतिबद्ध, काळो सूरज, दृष्टि सांप्रत पत्रिकाओं ने दलित चेतना के पक्ष में प्रकाशन किया । नया मार्ग, दृष्टि एवं सांप्रत पत्रिकाओं में कुछ स्तरीय रचनाएँ प्रकाशित होती गई ।[47]

यहाँ दलित चेतना मराठी के प्रभाव से ही आयी तो गुजरात के गाँवों में दलितों का शोषण, छुआछूत के अलावा बहुत कम मात्रा में हुआ है । शायद 'आरक्षण विरोधी' आंदोलन के चलते 'दलित साहित्य' अभी जगह बना पाया । तीसरा दलित रचनाकारों ने 'सायास विद्रोह' की तरफ जितना ध्यान दिया, उतनी तैयारी रचनात्मक प्रक्रिया की नहीं की । ऐसा भी नहीं था कि गुजराती में दलित-विषय पर 1975 से पूर्व रचनाएँ नहीं आई । यह सच है कि दलित शब्दावली विषयों की विविधता एवं दलित वस्ती का जीवन दलित कहानी की देन रहा है ।

गुजराती में 1930 के आसपास साहित्यकारों पर गांधीवादी

विचारधारा का जबरदस्त प्रभाव था, जिसके कारण उस समय की रचनाओं में अहिंसा अस्पृश्यता ग्रामोद्धार आदि विषयों पर उपन्यास, कहानी, कविता लिखे जाने लगे । रमणलाल वसंतलाल देसाई के उपन्यासों में अस्पृश्यता का निरूपण मिलता है । उपन्यास 'दिव्यचक्षु' में लेखक ने घनाभगत एवं किसन के चरित्रों द्वारा हिन्दू समाज में फैली छुआछूत को बखूबी उभारा है । उपन्यास 'ग्रामलक्ष्मी' में 'कानजी' के चरित्र द्वारा दलित किसान की स्थिति का निरूपण मिलता है ।

इसी तरह से झवेरचंद मेघाणी के उपन्यास 'वसुंधरा नां वहालां दवालां', 'सोरठ तारा वहेता पाणी' में तथा गुणवंतराय आचार्य कृत 'दरियालाला' उपन्यास में अस्पृश्यों की समस्याएँ दर्ज की गयी हैं ।

इसी प्रकार से कहानी विधा में रा.वि. पाठक की कहानी - 'खेमी' जो स्वयं में गुजराती कहानी का माईल स्टोन है - वह पूरी दलित कहानी है। डॉ. सुरेश जोशी की कहानी - 'जन्मोत्सव' दलित समस्या से जुड़ा हुआ अच्छा उदाहरण है । धूमकेतु ने अपनी कहानी को निम्न वर्णो पर केन्द्रित किया । मेघाणी ने 'कड़ेडाट' कहानी द्वारा समाज रचना के मूल ढाँचे पर प्रहार किया । उमाशंकर जोशी ने अपनी कहानियाँ 'गुजरी नी गोदड़ी', 'झाकडियु' एवं 'श्रावणी मेलों' में यथार्थवादी परिवेश के साथ असमानता के विषयवस्तु के अच्छे उदाहरण प्रस्तुत किए । कवि कथाकार 'सुंदरम्' की कविताओं का प्रमुख चरित्र 'कोया भगत' दलित है । उमाशंकर जोशी, सुंदरम् एवं जयंत खत्री की कहानियों में मार्क्स एवं फ्रायड का पचा हुआ प्रभाव दिखाता है । जयंत खत्री की विद्यागम रूप में देखों तो दलित पत्रकारिता गुजरात में काफी पनपी । दलित कविता में दलित जीवन की छवियाँ कडुआहट से भरा यथार्थ एवं सामाजिक रूढ़ियों पर आक्रमण छाया रहता । दलित कविता गुजराती कविता की मुख्यधारा में अभी तक अपना स्थान नहीं बना पायी है । फिर भी इस दिशा में प्रयासरत रचनाकार हैं नीरव पटेल, मंगल राठोड, सरूप ध्रवु, कृष्ण देव आदि । अभी 'दलित' पीड़ा कविता की शक्ल में घुल नहीं पायी है जो आगे कभी संभव हो पायेगा ।

दलित कविता की तुलना में दलित कहानी ने 1980 से लेकर 1997 तक अपनी उपस्थिति महत्वपूर्ण रूप में दर्ज़ करायी है । दूसरी भाषाओं की तुलना में गुजराती में दलित साहित्य का विरोध कम हुआ है । कुछ

साहित्यिक पत्रिकाओं एवं आलोचकों ने कुछ समय तक रचनाओं की उपेक्षा की । लेकिन 1984 में गुजराती के वरिष्ठ कथाकार डॉ. रघुवीर चौधरी की प्रेरणा से गुजरती दलित कहानी पर गोष्ठियों का आयोजन किया गया और दलित कहानी पर लगभग सभी आलोचक ने अपनी राय एवं टिप्पणी दी । तब से ही साहित्य क्षेत्र में यही आम राय रहीं कि 'दलित चेतना' से गुजराती साहित्य संपन्न ही होगा । अभी दो वर्ष पूर्व वल्लभ-विद्यानगर से प्रकाशित साहित्यिक सांस्थानिक पत्रिका 'वि' ने दलित कहानी अंक संकलन के रूप में प्रकट किया । इस बीच दलित विषय पर गैरदलित रचनाकारों की कहानियाँ या कविताएँ भी प्रकाशित हुई, जो इस विषय में खुली दृष्टि के कारण पुष्टिकर्ता ही साबित हुई ।

दलित कथाकारों में प्रमुख नाम है जोसेफ मेकवान और मोहन परमार । इनकी कहानियाँ, उपन्यास, रेखाचित्रों में दलित चेतना स्तरीय रूप में पनप पायी है । जब दलित कहानी-लेखन का आरंभ हुआ तब डॉ. सुरेश जोशी के पूर्ण प्रभाव में रूपवादी कहानी गुजराती परिदृश्य पर हावी थी । ऐसे में जीवन के प्रति लौटने की कुछ महत्वपूर्ण पहल में दलित चेतना भी महत्वपूर्ण कारण बनी हुई है । लोकग्रामीण बोलियाँ, ग्रामीण विषयों के विनियोग से दलित कहानी ने गुजराती को कुछ विशेष शब्दावली भी दी है । फिर भी जो चित्र बन रहा है वह ऐसा है कि जिन चार रचनाकारों की सक्रिय सृजनशीलता के बावजूद दलित चेतना अभी पूरी तरह विकसित नहीं हो पा रही हैं । इसके पीछे शायद कुछ कारण भी रहे होंगे - जैसे कि कहानियाँ 'अंधेरी गली', 'फूटपाथ एवं मजूरचाल' में दलित स्वर मुखरित है । गुजराती कहानी के भीष्मपिता से प्रसिद्ध पन्नालाल पटेल के आधे से अधिक चरित्र निम्न वर्गो से आए हुए है ।

दलित साहित्य चाहता है समानता एवं संवादीता । उसका तेजस्वी पहलू यह है कि दलित सतर्कता एवं दलित पहचान के उपरांत दूसरे मानवीय मूल्यों के संदर्भ में भी उसका सृजन होता है ।

दक्षिण भारत में दलित साहित्य :

दलित साहित्य ने पूरे भारत में अपना स्थान बना चुका है और इसमें भी दक्षिण भारत उससे अछूता नहीं रह पाया । दक्षिण भारत के कर्णाटक, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश और केरल राज्यों की मातृभाषा में चित्रित दलित साहित्य का परिचय करेगें ।

कन्नड दलित साहित्य (कर्णाटक राज्य) :

कन्नड दलित साहित्य में जो दलित वर्ग हैं उनमें प्रमुख है चेन्नणा, वालिकर, सिद्दलिंगफा, देवनूर, महादेव, बरगूट रामचंद्रप्पा, गंगाधर मुदलियार, गोविंदफा, इंदुधर होन्नापुर, सरजू काटकर, बालराजू, रमजानदर्गा, तेजस्वी कट्टीमनी आदि । दूसरे वर्ग में दलितेत्तर साहित्यकार हैं जिन्होंने दलित वर्ग के बाह्य-अंतरबाह्य जीवन से निकटतम संबंध स्थापित किया है और मानसिक स्तर पर शोषित जनता की पीड़ा को झेला है । इनमें डॉ. वृद्धच्णा हिंगमिरे, चंद्रशेखर पाटील, पी.टी. राजशेखर शेट्टि, सिद्धलिंग देसाई, जगदीश मंगलूरमठ, अल्पप्रभू बेटदूर, विजय पाटील, विजय मंगलूर उल्लेखनीय है ।

काव्य :

1975 के बाद कन्नड का 'नव्य काव्य' अंतिम कगार पर खड़ा हुआ था । तभी प्रमुख कवि 'चंद्रशेखर पाटील' ने घोषणा कर दी की 'नव्य काव्य मर चुका' उनका मतलब यह था कि नव्य काव्य में युग के ताप को वहन करने की और आम जनता की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने की क्षमता नहीं है । कन्नड़ की कविता तब तक एक तरह की संक्रमण स्थिति से गुजर रही थी और अपनी जमीन टटोल रही थी । तभी दलित साहित्य की नवीन धारा फूट निकली ।

चेन्नण्णा वालीकार दलित आंदोलन के निर्भीक एवं सशक्त साहित्यकार है । 'करि तेलि मानवनजीपद' उनका महत्वपूर्ण दूसरा कवितासंग्रह है । कवि ने शोषण के खिलाफ अपनी आवज़ बुलंद की है और यथार्थ से जूझने की अपनी विद्रोही आस्था का परिचय दिया है । जातिय पारंपारित शैली का अनुसरण करते हुए शोषण परंपरा का खंडन कन्नड साहित्य में अकेला उदाहरण प्रस्तुत करता है । तीसरा कविता संग्रह 'हाडकी हाडु डाग् इतर पद्यगळु' में विद्रोही स्वर सुनाई देता है ।

सिंद्धलिंगप्पा 'होले मादिगर हाडु' (हरीजनों के गीत) सिंद्धलिंगप्पा का प्रथम कविता संकलन है । आपात्तकालीन कराल शासन में दमघोट परिवेश प्रस्तुत करने के साथ-साथ निम्नजाति के लोगों पर उच्चवर्ग के लोगों द्वारा किए गए अत्याचारों का अंकन किया गया है । निरक्षरता अंधधार्मिक विश्वास, मूढ़ता, गरीबी, झूठे भगवान की आराधना, सडी गली सांप्रदायिक

पद्धतियाँ आदि बंधन में जकड़े हुए निम्न जाति के मानस को इन सबको तोड़कर बहार निकलने के लिए प्रेरित करता है । साधनहीन निहत्थे और निर्बल शोषित जनता संगठित होकर शोषण के खिलाफ खड़ी हो जाय तो बलिष्ठ शोषक शक्तियों से भीड़ने की क्षमता आ सकती है । यह तथ्य कवि ने सामने रखा है और इस प्रकार पीड़ित वर्ग से शक्ति संचार करने और आत्मविश्वास जताने का प्रयास किया है । कवि को विश्वास है कि क्रांति अवश्य होगी और समाज में समानता आ जायेगी । अत: कई गीतों में क्रांति का स्वागत उल्लास भरे हर्षोद्‌गार से करता है ।

'साविरारूनविगणु' (सौं.सौं. नदियाँ) दूसरा कविता संकलन है । 'अल्ले कुंतवरे' (वही के वही बैठे हुए) शीर्षक कथात्मक खंडकाव्य में कवि ने यह यथार्थ सामने रखा है कि सदियाँ बीत जाने पर भी दलित जनता की जीवन पद्धति में रतिभर भी बदलाव नहीं आया है ।

'हट्टुगल हाडु' कवि हिंगामरे का विवादास्पद कविता संकलन है । कवि की प्रगतिशीलता अपनी सारी शक्ति के साथ इन कविताओं में अभिव्यक्त हुई है । 'इतिहास के मुखपट' में आजतक का इतिहास गलत बताया है । क्योंकि उसमें संपन्न वर्ग से नीचे दबे पड़े निम्नवर्ग के संघर्ष की कहानी अंकित हुई है । इस प्रकार कवि हिंगमिरे वाम-पंथीय साहित्य के प्रगतिवादी आंदोलन और दलित आंदोलन के केन्द्रबिंदु है ।

कहानी :

'धावनूर' देवनूर महादेव का कहानीसंग्रह है । वह एक सदे हुए दलित कलाकार है । इस कहानीसंग्रह में हरिजनों के संघर्षमय जीवन का अंकन मिलता है । वर्गसंघर्ष, जाति कलह के साथ उन्होंने मानवसंबंधों के विभिन्न आयाम भी दर्शाये है । 'कप्पु कथेगळु' चेन्नप्पा वालीकार का कहानी संग्रह है । इस कहानीसंग्रह में श्रम और सेक्स का शोषण अंकन किया है । वालीकार के साहित्य में ऐसी क्रांति चेतना है जो हारे हुए व्यक्ति में भी योद्धा का हौंसला उत्पन्न करता है ।

उपन्यास :

एक गाँव की कहानी 'वैरु वुरिन कवें' इनका चर्चित उपन्यास है । इसमें एक छोटे से गाँव की उथल-पुथल को, उसकी संक्रमणशील स्थिति-

गतियों को उजागर किया गया है । लोग जब अकाल में दाने-दाने के लिए तरस्ते रहते है तब गाँव के धनी लोंग शोषण करते रहते हैं । वह शोषण धन, घर, खेत, सोना-चांदी से लेकर स्त्री तक व्याप्त है । वह कहानी केवल एक गाँव की ही नहीं भारत के सारे गाँवों की कहानी है ।

पत्रिका :

कन्नड में दलित साहित्य की शुरुआत 'दलित' नामक पत्रिका से मानी जाती है । इसके संपादक डॉ. बुद्दण्णा हिंगमिरे, प्रो.चेन्नाणावालीकर और डॉ. शोम शेखर ईम्रापूर है । इस पत्रिका में निम्न जाति के लोगों का सामाजिक पिछड़ापन, अंधविश्वास और अंधश्रद्धा एवं आर्थिक दुरावस्था आदि विषयों को लेकर लिखि गई कविताएँ तथा वैचारिक लेख प्रकाशित हुए । 'संक्रमण', 'शूद्र', 'आंदोलन', 'पंचम' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है ।

अफ्रिका के 'ब्लेकपेंथर' आंदोलन की शुरूआत सबसे पहले काले लोगों द्वारा नहीं, गोरों द्वारा हुई थी । उसी प्रकार कन्नड साहित्य में दलित आंदोलन की शुरूआत डॉ. बद्दण्णा हिंगमिरें, चंद्रशेखर पाटील, वी.टी. राजशेखर शेट्टी आदि साहित्यकारों एवं पत्रकारों द्वारा हुई है जो जन्मतः निम्नवर्ग के नहीं है । प्रस्थापित व्यवस्था के अंग होते हुए भी इन साहित्यकारों ने पूरी तरह से उससे कटे रहकर, उसका खंडन किया है ।

दलित साहित्य की उपलब्धियाँ :

कर्णाटक की समाज व्यवस्था में दलित आंदोलन हलचल मचा रहा है । शोषक शक्तियों के विरूद्ध भड़क उठे हैं । 'वीथी नाटक' भाषण, जुलुस के द्वारा सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ठ किया है और चेतावनी भी दी हैं कि जब तक अत्याचार का अंत नहीं होगा तब तक उनकी लड़ाई जारी रहेगी। ये सभी कार्य प्रणालियाँ दलित साहित्यकार की रचना प्रक्रिया के समान चलती है । युवा कार्यकर्ताओं का संघटन 'दलित क्रियासमिति', 'दलित संघर्ष समिति', 'समुदाय' आदि उल्लेखनीय है ।

इस प्रकार बहुसंख्यक शोषित वर्ग को शोषण के समस्त बंधनों से मुक्त करने में और उस वर्ग में क्रांति की चेतना को जागृत करने में कन्नड के दलित साहित्य का एतिहासिक पात्र रहा है । निःसंदेह कन्नड का दलित

साहित्य इस प्रयास को संभवनीय दिशा की ओर अग्रसर करने में सबसे आगे रहा है । अतः आज आमूल क्रांति की भावना सुगबुगाने लगी है । यही कन्नड के दलित साहित्य की उपलब्धि मानी जाना सकती है ।

उड़िया दलित साहित्य :

इन दिनों भारतीय साहित्य में 'दलित साहित्य' की तलाश का काम बहुत तेज़ी से हो रहा है । मराठी, हिन्दी, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं के बाद अब लोगों की दिलचस्पी हिन्दी साहित्य में दिखाई दे रही है । लोगों की जिज्ञासा है कि क्या अन्य भारतीय भाषाओं की तरह उड़िया में भी लेखन हो रहा हैं ? यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि उड़िया में दलित साहित्यकार भी दलित राजनीति, दलित कला, दलित साहित्य, दलित चेतना, दलित विरोधी आंदोलन जैसे शब्दों से सभा समितियों, अखबारों और पुस्तकों आदि के जरिये परिचिय हो रहा है । आज दलित उड़िया साहित्यकार भी गांधीवाद और अंबेड़करवाद में फर्क करना जान गया है ।[48]

उपन्यास :

यहाँ में उड़िया कथाकार गोपीनाथ महांति के सन् 1948 में प्रकाशित महत्वपूर्ण उपन्यास 'हरिजन' का हवाला देते हुए सुप्रसिद्ध हिन्दी आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय के इस कथन की पुष्टि करना चाहूँगी कि "करूणा और सहानुभूति के सहारे गैर-दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं ।" गोपीनाथ महंति ही नहीं प्रेमचंद की कहानियों के संदर्भ में भी इस कथन की जाँच की जा सकती है ।

अपने 'हरिजन' उपन्यास में गोपीनाथ महांति ने उड़िसा के एक बसे-बसाये शहर कटक के हरिजनों एवं संभ्रात धरानों के सभ्य व्यक्तियों से उनके अप्रत्यक्ष संबंध दिखा कर एक सामाजिक सत्य से परदा हटाये हुए अपनी सशक्त लेखनी का परिचय दिया है । समाज के शोषित, दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते हुए उन्होंने यह उपन्यास लिखा है । सत्तावन अध्यायों में लिखें अपने इस उपन्यास में महांतिजी ने दलित हरिजन समाज पर हो रहे अत्याचार एवं शोषण का एक मार्मिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है ।

'हरिजन' में शहरी सभ्यता के खोखले अहंकार बाहरी चकाचौंध व आडंबरपूर्ण जीवन धारा का गंदी-मैली संस्कृति से संघर्ष दिखाया गया है ।

SMT HANSA MEHTA LIBRARY
University of Baroda

बड़े गाल पर मवाद भरे जहरीले मुहासों की तरह नाक धरापुर की हरिजन बस्ती दिखाई दे रही है, जो कि सभ्य अविनाशबाबू और उनके परिवार की नज़रों में खटकती है । उन्होंने उन जहरीले मुहासों को येन-केन प्रकारण साफ करने की कोशिश की है । उस संघर्ष और उसकी दर्दनाक परिणति ही 'हरिजन' में दिखलायी गई है ।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने स्वतंत्र रूप से एक बूढ़े का चित्रण किया है । जब इन मैले-कुचैले, निर्धन, अवहेलित दुखियारों की ओर कोई सहानुभूतिपूर्वक तब तक नहीं देखता । यह बूढ़ा ही उनमें संजीवनी शक्ति का संचार करता है । उनमें गर्व से जीने की प्रेरणा भरता है । लेकिन तथाकथित शहरी लोगों की षडयंत्रपूर्ण कूटनीति के सामने गरीब की ताकत व उनका क्षोभ बेअसर साबित होते हैं । बूढ़े की अग्निवर्षक वाणी अमीरों के मंत्र पर कोई असर नहीं डाल पाती । इसलिए सुबह होने से पहले ही अपना घर-द्वार छोड़कर वह बूढा स्मशान के पास धर्म के अंदर गीली ज़मीन की ओर चल पड़ता है । उसके पीछे-पीछे दलित हरिजन सेना चल पड़ती है लेकिन गरीब और दलित लोगों की जगह शहर से बाहर उजाड़ जंगल है, यह बात महांतिजी ने स्पष्ट रूप से 'हरिजन' के जरिये कही है । दलित अछूतों का उद्धार करनेवाले बूढ़े की गतिविधियों को देखते हुए उस पर अछूत हरिजन उद्धारक महात्मा गांधी का प्रभाव दिखाई देता है ।

लेखक का कहना है कि 'हरिजनों' के जीवन को काफी करीब से देखने का अवसर मुझे मिला है । लोगों के पाखनों की जाँच मैंने स्वयं घूम-घूमकर की है । झुककर पाखने से गंदगी निकालते वक्त मेहतरानी की नाक से मल की दूरी होती ही कितनी है । इतना होने पर भी गरीब अपने कुकृत्यों से धृणा नहीं करता । लेकिन सभ्य अमीरों को अपने कुकृत्यों से नफरत न होकर इन महेनतकश गरीबों की चैन की रोज़ी-रोटी से जलन होती है । यह बात काफी हद तक सही भी है कि अमीर बनने के लिए गरीब की चिताओं से ही होकर गुजरना पड़ता है । 'हरिजन' की तत्कालीन समस्या आज भी हमारे समाज में जैसी की वैसी बनी हुई है ।

काव्य :

पाँचवे दशक के बाद उड़िया में कुछ गैर-दलितों द्वारा दलितों पर छिटपुट कविताएँ एवं कहानियाँ लिखी जाती रही हैं लेकिन वे समाज के

दलित वर्ग पर कोई खास असर नहीं डाल सकी । विभिन्न प्रदेशों में दलितों द्वारा लिखें जा रहे साहित्य से प्रभावित होकर उड़िया में भी विचित्रानंद नायक तथा रामचंद्र सेठी जैसे प्रतिभावान दलित लेखक पिछले दो दशकों से कला-साधना कर रहे हैं । इसके अलावा दलित न होते हुए भी कुमार हसन खुद दलित चेतना को जगाने में जुटे है । उड़िया पाठक उन्हें दलित साहित्यकार के रूप में जानते हैं । जब महाराष्ट्र में दलित साहित्य की सुगबुगाहट शुरु हुई थी, उड़िसा में दलित कवि विचित्रानंद नायक का काव्यसंग्रह 'अनिर्वाण' सन् 1973 में प्रकाशित हो चुका था । इस आधुनिक उड़िया साहित्य में प्रथम दलित काव्यसंग्रह के रूप में मान्यता दी गई । हालाँकि इससे पहले भक्तिकाल से उड़िया साहित्य में 'दलित साहित्य' की तलाश शूद्रमुक्ति सारलादास, पंचसखा साहित्य और उसके बाद भीमबोई की साहित्यिक कृतियों में की जा सकती है, किंतु बाबा साहब अंम्बेड़कर की विचारधारा से प्रभावित जिस 'दलित साहित्य' की बात यहाँ की जा रही है, विचारधारा के स्तर पर वह उड़िया भक्तिकाल के साहित्य के कुछ भिन्न अवश्य है पर भावना दोनों की एक ही है । अन्य भारतीय भाषाओं की तरह उड़िया में भी 'दलित साहित्य' के नाम पर कविताओं की ही भरमार है । ऐसा नहीं है कि दलितों द्वारा कविताओं के अलावा कहानियाँ, उपन्यास या नाटक लिखने के प्रयास नहीं हुए है और बहुत कम । एकाध दलित लेखक ने अपने जीवन की अनुभूति आत्मकथा के जरिये प्रकाशित की है लेकिन यह सच है कि सदियों के दुःख, दर्द और यंत्रणा को कविता के जरिये निचोड़ना इन लेखकों के लिए सहज और सरल बन पड़ा है । जातिवाद के नाम पर 'दलित' को किसी तरह 'अछूत' बना कर सभी तरह के हीन काम करने को मज़बूर किया गया उसके विरुद्ध भारतीय दलित कवि आज विद्रोह कर उठा है । किसी भी भाषा की दलित कविता में दलितों की तिलमिलाहट व आक्रोश के स्वर साफ-साफ सुनाई देगें । हाँलाकि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह आज उड़िया दलित काव्य लेखन भी अपनी शैशवस्था में है, पर रचनात्मकता की दृष्टि से इसमें परिपक्वता दिखाई पड़ती है । निश्चित ही इसका श्रेय उड़िया दलित कवियों को जाता है । इस संदर्भ में अनुवाद में ही सही उड़िया दलित कविता 'मुक्ति' की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती है ।

"वे है उतप्त आज परित्यक्त सरहद तले
वे लोग निश्चित ही जगेगें कल सबेरे ।
हुत-हुत जला डालेगें रोटी के लिए मज़दूर सभी
उस पूर्वाशा के निकट आह्वान का लाल रक्त सारा ।"[49]

(विचित्रानंद नायक)

वैदिक युग से आज तक ऊँची जाति के लोगों ने दलितों का लगातार शोषण किया है शिक्षा और संस्कृति ही नहीं, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी दलितों को ऊँची जाति के लोगों पर ही पूरी तरह निर्भर होना पड़ा है । लेकिन अब जमाना बदल रहा है । अब दलित मुक्ति चाहता है । बहुत दिनों, युगों से पहनायी गई बेडियाँ तोड़ डालना चाहता है । उड़िया दलित कवि सिर्फ उड़िया समाज में हो रहे अन्याय-अत्याचार के विरूद्ध ही आवाज़ नही उठाता, बल्कि पूरी दुनिया में हो रही अमानवीय घटनाओं को भी अपनी कविता में स्थान देता है । लेखक होता ही संवेदनशील है । वह कहीं का भी क्यों न हो हंमेशा ही अन्याय के विरूद्ध आवाज़ उठाता रहा । आखिर अछूत इससे अछूत कैसे रह सकता है ?

दलित कवि अपने जीवन के अनुभव के सहारे अपना काव्य संसार रचता है । इसीलिए उसकी कविता के प्रतीक, रूपक, छंद और राग जीवंत हो उठते हैं । कभी-कभी उसका विद्रोह किसी व्यक्ति विशेष या जाति-विशेष के विरूद्ध न होकर संपूर्ण समाज व्यवस्था के प्रति होता है ।

कहानी :

जहाँ एक ओर उड़िया काव्य के क्षेत्र में विचित्रानंद नायक का स्वर मुखर है, वहीं दूसरी ओर उड़िया दलित कहानीकारों में रामचंद्र सेठी एक जाना पहचाना नाम है । रामचंद्र सेठी ने अपनी कहानी 'द्वितीय बुद्ध' में श्री जगन्नाथजी को एक कल्पना सामग्री मात्र माना है । दलित जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकता । दलित लेखक की अपनी कल्पना में ढूंढ़ते हुए अंत में जगन्नाथ जी को पाता है - अपनी प्रेमिका के बदन पर । अपनी इस कहानी के जरिए एक नए दर्शन की स्थापना की है । अध्यापक रामचंद्र सेठी ने यह दर्शन दलित साहित्य के विद्रोही स्वर को जीवंत करता है । दलित कथाकार रामचंद्र सेठी के चिंतन और दर्शन से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वे परंपरा विरोधी कथाकार है । यह विशेष धर्म को लेकर हो, भगवान को

लेकर हो, धर्म या संस्कृति को लेकर हो जिस दलित लेखक को जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है उसे धर्म एक प्रहसन मात्र लगता है । हाँलाकि वह जानता है कि इसके पीछे भी ऊँची जाति वालों का ही हाथ है । धर्म के नाम पर सैकड़ों दीवारें बनाकर जिस तरह लोगों को बाँटा जा रहा है । उसके विरूद्ध रामचंद्र सेठी ने अपनी कहानी 'नास्तिकता की तीर्थयात्रा' में अनेक महत्वपूर्ण सवाल उठाएँ हैं । अन्य भाषाओं की तरह उड़िया में भी ऐसे दलित साहित्यकार हैं जिन्होंने मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होकर वर्गहीन समाज के निर्माण के लिए अपनी कविताओं और कहानियों के माध्यम से नारे लगाए है ।

अत: यह कहा जा सकता है कि अन्य भाषाओं की तरह उड़िया दलित साहित्य भी लाचारी, छूआछूत, कपट तथा सामाजिक शोषण को अपने लेखन का आधार बनाकर अपने पथ पर आगे बढ़ रहा है । सदियों से प्रचलित परंपरा एवं विचारधारा का खुलकर विरोध करना ही आज दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य बन गया है । अन्य भाषाओं की तरह उड़िया में 'दलित साहित्य' अधिक नहीं लिखा गया, परंतु साहित्य में कम या अधिक के आधार पर संभवत: मूल्य निर्धारण नहीं होता ।

तेलुगु दलित साहित्य (आंध्रप्रदेश राज्य) :

आंध्रप्रदेश राज्य में दलित साहित्य का विकास कहाँ तक हुआ है, इसका प्रमाण हमें तेलुगु भाषा में मिल रहा हैं । भारत में आधुनिक दलित चेतना का उद्‌भव 19वीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ जिसका केन्द्र महाराष्ट्र रहा है । ज्योतिबा फूले, तमिलनाडु में पेरियार, केरल में नारायण गुरु, महाराष्ट्र में शाहूजी महाराज ने दलित चेतना का उत्थान का काम किया । डॉ. बाबासाहब ने दलित-चेतना को आंदोलन बनाया ।

तेलुगु में दलित रचना का उन्मेष 'जाषुवा' में हुआ जैसे उन्होंने ईश्वर को भी ललकारा कि दलितों को अधिकारों से क्यों वंचित रखा ? शोषण रहित, वर्ग विहिन समतामूलक समाज व्यवस्था का स्वप्न उन्होंने देखा था जहाँ ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की सीमा रेखा न हो 'गब्बिलम्' नामक रचना से तेलुगु दलित साहित्य का प्रारंभ हुआ । क्रो-तलाकमु (नया संसार) मुसाफि (मुसाफिर) राष्ट्रपूजों, नाकथा, क्रीस्तु चरित्र प्रमुख रचनाएँ हैं । 'फिरदोसी' खंडकाव्य है ।

आज की तेलुगु दलित कविता के कवि है - सूर्यवंशी, ख्वाजा, स्कैबाबा, कलेकुरिप्रसाद आदि ने तेलंगाना की माँग, सशस्त्र संघर्ष, अेकलव्य, शम्बूक आदि से दलित चेतना विकसित हुई है । भाषा की दृष्टि से आंध्रप्रदेश की तेलुगु संस्कृत को छोड़कर जाषुवाने 'शूद्रों की भाषा' कहलानेवाली मूल तेलुगु, तेलुगु की साहित्यिक भाषा बनायी है । शैली की दृष्टि से दलित अभिव्यक्ति धारदार बनी है प्रतीकों का आधुनिक प्रयोग किया जा रहा है । दलित नारी ने भी जाँति, लिंग और वर्गीय शोषण के विरूद्ध में नारी कवियित्रियों ने सशक्त रचनाएँ प्रदान की है जिसमें स्वरूपा हानी नामांकित है ।

सभी भारतीय भाषाओं के जैसे तेलुगु भाषा में भी 1990 से दलित साहित्य का दौर आरंभ हुआ है । साहित्य के क्षेत्र में जब किसी वाद या विद्या का जन्म होता है तो उसके अनुकूल और प्रतिकूल स्पंदन होना सहज ही है । तेलुगु भाषा में अनेक दलित कवि दलित साहित्यिक आंदोलन के लिए कविताओं और गीतों के माध्यम से अपना सहयोग बराबर देते रहे है ।

दलितों की समस्याओं को कविता में प्रतिबिंबित करनेवाले प्रथम कवि 'गुर्रम जाषुवा' । वे 'गब्बिलम्' और 'अनाथ' जैसी कविताओं के माध्यम से छूआछूत की समस्या को चित्रित कर प्रति घटना चैतन्य के प्रतीक बन गए अम्बेड़कर की प्रतिभा को तारीफ करने के साथ-साथ अम्बेड़कर के सम्मान को प्रत्येक दलित व्यक्ति का सम्मान माननेवाले प्रथम कवि 'जाषुवा' और कवि 'बोई भीमन्ना' है । इन सब कवियों की विचारधारा यह है कि जातिगत भेदभाव के विरोध में होनेवाले और वर्ण व्यवस्था के विरोध में करनेवाले वर्ण आंदोलन का रास्ता बनाये ताकि अन्य दलित लोग भी इस आंदोलन में भाग लेकर इस समाज से वर्ण भेद को दूर कर सकें ।

द्वितीय कोटी के कवि वर्ण आंदोलन को वर्ग आंदोलन के साथ जोड़कर साहित्य के क्षेत्र में कविताएँ करने लगें । इनके साहित्यिक आंदोलन में किसान, मज़दूर, आदिवासी, जनसमुदाय, दलित, हरिजन, ताड़ित, पीड़ित जनता को स्थान मिल गया है । मार्क्स के वर्ग आंदोलन सिद्धांत का सहारा लेकर दलित स्पृहा को जागृत कराते है । इस कोटी के प्रथम कवि है सुब्बारा प्राणीग्राही ।

तृतीय कोटी के दलित कवि अम्बेड़कर के सिद्धांतों का प्रबोध करते हुए सामाजिक आंदोलन, मार्क्स के सिद्धांतों के आर्थिक आंदोलन के साथ

जोड़कर सामाजिकार्थिक आंदोलन के लिए संकेत करते हैं । वे आशा करते हैं कि इस आंदोलन के द्वारा दलितों को सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता प्राप्त होगी । इस वर्ग के कवियों में 'कत्ति पद्मराव' और मास्टरजी का नाम लिया जाता है । यह आंदोलन परंपरागत वेदना से जन्म लेकर आक्रोश का रूप धारण कर आत्म-सम्मान के लिए होनेवाली प्रतिघटना युक्त चैतन्य धारा है । फिर भी ऐतिहासिक परिणाम क्रम में यह दलित आंदोलन कटु यथार्थ सत्य है ।[50]

आंध्रप्रदेश में कविता 'मारिगा दंडोरा' (चमारों का आंदोलन) 'तुडुम रेब्ब' (अनुसूचित जातियों का आंदोलन) 'डोलु देब्बे' (पिछड़े वर्गो का आंदोलन) अपने ध्येय के साथ विकसित हो रहा है । अल्पसंख्यक समुदाय 'जिहाद' कविता संग्रह से आंदोलित हुए है ।

उपन्यास धारा में 'कालीपट्टत्तम रामाराव' का 'यज्ञ' उपन्यास में दलित मज़दूर अपने ही सम्मान की हत्या करके मुक्तिमार्ग की शोध कर रहा है । 'कोल क्लूरी' इनाक की नवलिका, 'गामनो कूवो' प्रचलित है । केशव रेड्डी की 'गुलाम' नवलिका में दलितों का संघर्ष है । सी.एस. राव की नवलिका 'गाँव की सामूहिक जींदगी' में धर्मान्तरण ईसाई, बौद्ध में किसका स्वीकार किया जाय ? आक्रोश के साथ लघुमती कहलाने की बात है ।

'तल्ला प्रगड' की 'हेलावती' रंगराथु चरित्र उन्नव लक्ष्मीनारायण लिखित मालमपट्टी, एन.जी. रंगा की 'हरिजन', नायकड्डु मुप्पाला रंगनायकला की 'बीलपीठम' त्रिवर्णपताका नमुलकंटी जगन्नाथम् की 'अछूत युग्म', एन.आर. नंदी की 'नैमिशारण्यम्' में हिन्दू जाति का अहंकार का चित्रण हुआ है । नारी जीवन को प्रस्तुत करनेवाला नारीवादी उपन्यास दलितवाद की पूर्तता कर रही है। अरूणा द्वारा रचित 'नीली' 'एल्ली' में दलित और नारीवाद का चित्रण है। धार्मिक सुधार, गांधीविचारधारा, धर्मान्तरण, ऋषिपरंपरा, धार्मिकता, जाति आधारित दलितवाद से सुधार, संघर्ष और आत्मगौरव की परंपरा की रक्षा तेलुगु दलित कथा साहित्य का आधार स्तंभ है । आत्मकथा या आत्मकथा नामक साहित्य में तेलुगु में विकसित हो रहा है ।[51]

मलयालम दलित साहित्य (केरल राज्य) :

केरल राज्य की मातृभाषा मलयालम है । दुनिया की हरभाषा के साहित्य में दीन-दीन विवश और लाचारों के प्रति सहानुभूति और पक्षधरता

की कोई न कोई धारा बनी ही रही है । भारत में उसी धारा का नाम दलित साहित्य है ।

मलयालम साहित्य के सबसे विख्यात लेखक एम.टी. वासुदेवन नायर की 'नालुके' उपन्यास की विषयवस्तु है नायर तरवाड का पतन । इस उपन्यास के प्रधानपात्र अप्पुणि के विचारों और यातनाओं के द्वारा कैसा विश्व हमारे सामने उद्घाटित होता है । तरवाड़ शासन का अभिन्न रंग नहीं बन पाने दर्द एक प्रेतकी तरह हंमेशा अप्पुणि का पीछा करता है । यह दर्द अप्पुणि के अंदर सत्ता-निषेध के रूप में नहीं । बल्कि एक तुच्छ ईर्षा के रूप में बढ़ता है कि सत्ता में उसकी हिस्सेदारी क्यों नहीं है ? तरवाड़ शासन न मिलने के कारण उसे अम्मिणियेडित को पाने का सौभाग्य नहीं होता है ।

अप्पुणि अकेले धन हांसिल करने के लिए निकल पड़ता है । अप्पुणि रूपये कमाकर लौटने के बाद तरवाड़ खरीदता है । बाद में नष्ट कर देता है तथा प्रकाश और हवा से परिपूर्ण घर बनाने की कोशिश करता है । नालकट्टर की भाषा मर्मस्पर्शी और विशुद्ध ग्रामीण है । केरल के नायर और अम्बलवासी समुदाय की बोलचाल की भाषा है ।

नाटक :

केरल को झकझोर देनेवाले तोप्पिल भासी के नाटक 'निडलेन्ने कम्पुनिस्टाफि' 'तुमने मुझे साम्यवादी बनाया' में केन्द्रीय संघर्ष नायर तरबाड़ितम और साम्यवादी दल के बीच है । इस केन्द्रिय कथन को और स्पष्ट करने हेतु माहौल बनाने के लिए चातन और माला को नाटक में पात्र के रूप में शामिल किया गया है । अछूत चात्तन परतु पिल्ला को छूने के बाद उत्तेजित होकर खिलौने की तरह उछल रहा है । केरलवासियों का अस्तित्वात्मक संकट भयानक है । शहरी क्षेत्रों में फँसे मध्यमवर्ग के विभ्रम और उनके अस्मिता की तलाश अयप्पा पणिक्कर के कुरूक्षेत्रम् कविता में है । इस कविता का मूल बिंब नेत्रहीन धृतराष्ट्र की समस्या है ।

उपन्यास :

ओ.वी. विजयन की 'खसकिन्ते इतिहासम्' (खासक्का महाकाव्य)

उपन्यास है जिसमें रवि का सांसारिक अनुभव है । अपनी सौतेली माँ से अवैध संबंध से उपजा पाप बोध और अंतहीन पुनर्जन्म पर संशय रवि को लक्ष्य-विहीनता और अर्थ विहीनता की ओर ले जाते है । केराला वासियों द्वारा बनाई अस्तित्व चेतना में रवि की लावारिश लाश की तरह मिलती है । 'बशीर' और आनंद जैसे लेखक प्रवृतिशील है । बशीर का आख्यान मलयालम में एक अच्छा खासा मिथक हो गया है । उसकी कहानियाँ और उपन्यासों में चित्रित केरल अब तक चर्चित रचनाओं की स्थितियों से बिलकुल भिन्न है । 'आनंद' के लेखन में एक दार्शनिक नीड़रता दिखाई देती है । 'निषादपुराण्णम्' में एकलव्य को उठाता है । आनंद मलयालम के एक मात्र आधुनिक लेखक है, जो अपनी दार्शनिक प्रतिबद्धता के कारण भाषा की सांप्रदायिक अधोगति से ऊपर उठ जाते हैं ।

मलयालम का दलित साहित्य दलितों की उस नयी पीढ़ी की अत्माभिव्यक्ति के रूप में विकसित हो रहा है जिसे उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला है । उन्होंने अपने अनुभवों को एक नयी चेतना से समझा और इनकी अभिव्यक्ति के तरीके और स्वतंत्रता के प्रति अपने अनुराग के कारण उनके लेखन में दलित को एक अस्थिर अस्तित्व प्राप्त होता है । इस तरह के साहित्य में जो लोग आये उनमें टी.के.सी. वडतला का नाम अग्रगण्य है । उनकी कहानी अच्चन्ड वेंजिन्डा इन्ना (कादर अपनी सलीब वापस लेलो) में वे ईसाई धर्म अपनाकर पुलयन की अस्मिता के संकट को अतुलनीय सुक्ष्मता के साथ चित्रित करते हैं । मलयालियों द्वारा अपेक्षित अन्य कहानीसंग्रह है । 'दुखकलिले स्वप्न गडल' (दोपहर का सपना) जिसके लेखक है - 'अप्पप्पन' एक ईसाई (आमतौर से सवर्ण) का पुलिया औरत दलित औरत के गुप्त यौन संबंध हो सकता है । पर उससे शादी नहीं होती । 'आनभ्रंत' (हाथी और पागलपन) उण्णिप नम्बूदिरी की कहानी है जो हाथी खरीदने की अपनी जिद्द के कारण दिवालिया हो जाता है ।

कविता :

अधिक हस्तक्षेप काव्यक्षेत्र में हुआ है । दलित कविता के माध्यम से बात करने में समर्थ कवि हैं - के.के. दास, उनकी कविताएँ आत्मक्षोभ,

गोत्रस्मृति और मूल्य निषेध की सुगठित अभिव्यक्ति है । इस कवि में पुरातन जातिय स्मृति का खज़ाना है । यह कवि कहता है कि उन्हें बाघ की आँखों में आँखें डालकर देखना चाहिए । काँटों को चबाकर काँटों पर थूंकना चाहिए । प्रतिभाशाली कवि शीश है । प्रत्येक शब्द में एक नई संसारानुभूति भरनेवाला यह कवि अद्भूत है । शंबूक में संबोधन है 'शंबूक ! तुम लोगं के बीच किस गंदे जीवन में हो, तेज घोड़ों पर लगाम् लगा हुआ है और वे कौड़े खा रहे है' - इन शब्दों के बीच छिपे एक शक्तिशाली और गहरे संसार की व्याख्या क्या हो सकती है ? भारतीय सांस्कृतिक चेतना पर गहरी चोट है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दलित साहित्य रचना और विचार, संपादक - डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, अतिश प्रकाशन, दिल्ली, पृ.20
2. वही, पृ.20
3. वही, पृ.7
4. वही, पृ.8
5. वही, पृ.8
6. वही, पृ.9
7. वही, पृ.9
8. वही, पृ.10
9. वही, पृ.10
10. वही, पृ.11
11. वही, पृ.27
12. वही, पृ.80
13. वही, पृ.80
14. वही, पृ.80
15. प्रत्यायन, लेखक - भी. न. वणकर, पृ.17
16. अस्मितादर्श, अगस्त-नवे. 1974, डॉ. गंगाधर, पृ.73
17. गुजराती दलित वार्ता, संपादक - हरीश मंगलम्, मोहन परमार
18. दलित साहित्य - 1999, संपादक - जयप्रकाश कदर्म, संस्करण-2001, अतिश प्रकाशन, दिल्ली, पृ.28
19. वही, पृ.31
20. दलित साहित्य - 1999, संपादक - जयप्रकाश, कदर्म, पृ.50
21. वही, पृ.52
22. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य, डॉ. श्यौरराज सिंह बेचैन, डॉ. देवेन्द्र चौबे, नवलेखन प्रकाशन, बिहार, पृ.229
23. वही, पृ.230
24. वही, पृ.230
25. वही, पृ.231
26. वही, पृ.232
27. वही, पृ.233

28. दलित साहित्य - 1999, संपादक जयप्रकाश कदर्म, पृ.55
29. वही, पृ.58
30. 'सरस्वती' सितम्बर-1914
31. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य, पृ.150
32. 'सरस्वती' सितम्बर-1914, अछूत की शिकायत, पृ.51
33. वही, पृ.151
34. वही, पृ.52
35. वही, पृ.154
36. प्रेमचंद साहित्य में दलित चेतना, संपादक - बलवंत साधू जाधव, पृ.54
37. वही, पृ.58
38. वही, पृ.59
39. वही, पृ.39
40. वही, पृ.62
41. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य, डॉ. श्यौरराज सिंह 'बेचैन', डॉ. देवेन्द्र चौबे, प्रकाशन - नवलेखन, बिहार, संस्करण-2000, पृ.223
42. वही, पृ.221
43. वही, पृ.221
44. वही, पृ.195
45. वही, पृ.195
46. वही, पृ.196
47. वही, पृ.218
48. वही, पृ.224
49. वही, पृ.227
50. तेलुगु साहित्य में दलित दस्तक, संपादक - रमणिका गुप्ता, पृ.101
51. पंजाबी दलित साहित्य एक दृष्टिपात, अनुवाद - डॉ. कल्याण वैष्णव, अक्तूबर-नवम्बर, 1988, पृ.5